जेल से जसलोक तक

अक्षय कुमार जैन

जेल से जसलोक तक

लोकनायक जयप्रकाश नारायण के तपस्या एवं संघर्षमय जीवन की झलकियां

अक्षय कुमार जैन

Jain, A. K. : JAIL-SE-JASLOK-TAK :
(A biography of Jai Prakash Narain) :
New Delhi : 1977

प्रथम संस्करण : १९७७

प्रकाशक : पंजाबी पुस्तक भण्डार,
दरीबा कलां, दिल्ली-११०००६
वितरक : हिन्दी बुक सेन्टर
४/५ बी, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-११०००२
मूल्य : दस रुपये मात्र (10·00)
मुद्रक : नवदीप प्रिंटर्स, सी-27, इण्डस्ट्रियल एरिया मेरठ रोड,
गाजियाबाद

" क्या आप ऐसे आदमी की सलाह सुनेंगी ? कृपया उन बुनियादों को तबाह न कीजिए जिन्हें राष्ट्र पिता और आपके योग्य पिता ने स्थापित किया। जिस रास्ते को आपने चुना है उसमें कष्ट और परेशानियों के अलावा कुछ नहीं। आपको एक महान परम्परा उम्दा एव फलता फूलता गणराज्य विरासत मे मिला है—उसको नष्ट न कीजिए। इन सबको पुन एक साथ लाने मे बहुत समय लगेगा—यद्यपि मुझे विश्वास है कि ये सब फिर एक साथ लाए ही जायेंगे—क्योंकि वे लोग जिन्होंने बर्तानवी साम्राज्य के साथ लड़ाई की और उसे झुका दिया, आप की शमनात्मक तानाशाही को लम्बे समय के लिए स्वीकार नहीं कर सकते "

भूतपूर्व प्रधानमन्त्री इन्दिरा गांधी के
नाम लोकनायक के 21 7-75 के
पत्र से उद्धरित।

लोकनायक जयप्रकाश नारायण का नाम भारत के स्वतन्त्रता इतिहास म एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। देश विभाजन से पूर्व उन्होने अग्रेजो की जेल-यातनाए सहन की—और स्वतन्त्रता के बाद किसी भी बड़े से बड़े पद को उन्होंने स्वीकार न किया।

१९७५ में जब हमारा राष्ट्र एक नई प्रकार की 'तानाशाही' अथवा 'गुलामी' का शिकार हुआ तो जयप्रकाश जी शान्त न रह सके और उन्होंने 'पूर्ण क्रान्ति' का नारा लगाया। एक बार फिर उनको जेल की यातनाए सहन करनी पड़ी—और अन्त में वह सफल हुए—यद्यपि यह सफलता उन्हे अपने स्वास्थ्य का बलिदान देकर मिली थी।

प्रस्तुत है उनकी यह मर्मस्पर्शी जीवन-गाथा जिसे प्रकाशित करने पर हमें गर्व है—!

प्रकाशक

लोकनायक जयप्रकाश नारायण के सम्बन्ध मे लिखना सरल भी है और कठिन भी। सरल इसलिए कि इस सीधे, सरल व्यक्ति के जीवन मे कहीं कोई गाँठ नही है। सीधे सादे बिहार के छोटे से गांव मे जन्म लेकर चाहे उन्नत अमरीका मे शिक्षा पाई, पर भारतीयता के सद्गुण स्पष्ट रूप से उनमे प्रचुर मात्रा मे हैं। गगा की धारा की तरह उनका जीवन एक प्रवाहमान जीवन है जो राष्ट्र और मानवता के लिए समर्पित है। कठिन इसलिए कि राष्ट्रवादी विचारो की हवा मे जन्म लेकर क्रान्ति की लहर के साथ वे आगे बढे। अमरीका मे उच्च शिक्षा के समय मार्क्सवाद के दर्शन का गहन अध्ययन उन्होने किया किन्तु गाधीवाद की गहरी पैठ उनमे सदा रही और क्रातिकारी पगडडी से वह साम्यवादी, गाधीवादी, समाजवादी, सर्वोदयवादी और अन्त्योदय तक के राजमार्ग पर पहुँच गये। कहीं कोई विसगति नही। अपार कठिनाइयो के जीवन मे से तप कर वह आगे बढते गए।

अग्रेजो की जेल मे वह रहे। उसे तोडकर भागे, भगोडो का जीवन जिया, क्राति की अलख जगाई और नेताजी सुभाष की भाँति भारत से बाहर नेपाल मे 'आजाद दस्ता' जैसा अर्ध-सैनिक संगठन खडा किया। जेल मे वे अत्याचार सहे कि जिन्हे सुनकर रोंगटे खडे हो जायें ...... स्वराज्य आया। पर जे० पी० का काम पूरा होने के बजाय बढ और गया।

बडे-से-बडे पद को उन्होंने अस्वीकारा। समय बीता, देश मे परिस्थिति ऐसी बनी कि उन्हें फिर जवानो की तरह मैंदान मे उतरना पडा। अब उनकी जीवन-सहचरी प्रभाजी भी नही थी, जो उनकी देखभाल करती। पर, वे तो अब सब के हो गए थे। चम्बल के 'समाज-विरोधी बागी डाकुओ को समाज मे फिर ले आना उनके चमत्कारो मे से है।

लोकतंत्र की हत्या लोकनायक कैसे देख सकते थे। उन्होंने क्रांति का आह्वान किया। जेल में डाल दिए गए। कौन जानता था कि मधु-मेही जे० पी० — हृदयरोगी भी हैं, और उनके गुर्दे जवाब दे गए हैं। जेल से मुक्ति तो हुई पर कृत्रिम गुर्दे जे० पी० के जीवनाधार हो गए। बम्बई का जसलोक अस्पताल उनका दूसरा घर हो गया।

लोकनायक का स्वर सफल हुआ। तीन वर्ष का कठिन शासन समाप्त हो गया। जनता सरकार बनी और पैरों के बजाय कुर्सी पर चलकर जे० पी० जसलोक अस्पताल से दिल्ली में गांधी समाधि पर नये सांसदों को शपथ दिलाने पहुंच गए। बागियों की भांति जे० पी० के सामने तस्करों ने भी शपथ लेकर कानून को शिरोधार्य किया।

जे० पी० का स्वास्थ्य गिर गया। अब कृत्रिम गुर्दे के लिए उन्हें एक प्रापट शल्यक्रिया की आवश्यकता थी। उसके लिए उन्हें अमरीका के सिएटल नगर जाना पड़ा। वहां स्वीडिश अस्पताल में उनका सफल आपरेशन हुआ। स्वदेश लौटे और अब सम्पूर्ण क्रांति के लिए कार्य करने का संकल्प उन्होंने लिया है।

इस पुस्तक का नाम है 'जेल से जसलोक तक'। उनके राजनीतिक जीवन के गुरू यानी जेल से जसलोक अस्पताल तक का महत्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन—पर यह सच है कि यहां उनके जन्म-स्थान सिताबदियारा से सिएटल से वापस लौटने तक की कहानी दी गई है। महत्व निश्चय ही उनकी लोकतंत्र की पुनर्स्थापना को ही दिया जाएगा। उन्होंने स्वराज्य प्राप्ति के लिए हजारीबाग जेल से भागकर जान की बाजी लगाई थी और फिर चंडीगढ़ जेल में गुर्दों के समाप्त हो जाने पर लोकतंत्र की रक्षा के लिए उनके प्राणों पर बन आई थी।

किन्तु रात्रि के बाद प्रभात आता है और यह आ गया है। इस अरुणोदय में हम उनके स्वस्थ एवं दीर्घ जीवन की कामना करते हैं।

इस पुस्तक की तैयारी में हमारे सहयोगी श्री रवीन्द्र सक्सेना और चन्द्रमणि भगत का पूरा-पूरा सहयोग हमें प्राप्त रहा है, उन्हें अनेक धन्यवाद।

25-5-77 —अक्षयकुमार जैन

जेल से जसलोक तक

बिहार ! जहाँ प्राचीन काल से ही महापुरुषो ने विहार किया है।

रामायण काल मे मिथिला—वर्तमान बिहार का एक महत्वपूर्ण स्थान—महाराज जनक के कारण विश्व प्रसिद्ध हो गया था। विदेहराज की प्रसिद्धि थी कि वह शासक होते हुए भी प्रजा के दुलारे थे और जो कार्य सामान्य प्रजा-जन करते थे—खेती करना, हल चलाना आदि उसे करने मे जनकराज को रस आता था।

उसी परम्परा मे बुद्ध और महावीर काल मे मगध भारत की ही नही, इस ओर ही दुनिया की सास्कृतिक और राजनीतिक राजधानी बनी रही। बुद्ध और महावीर के बाद अशोक, चन्द्रगुप्त, समु. गुप्त आदि यहाँ पर अनेक ऐसे शासक रहे जिन्हें समार आज भी इज्जत के साथ याद करता है।

आधुनिक समय मे गाधी जी का सत्याग्रह का प्रयोग बिहार से ही शुरू हुआ। भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद भी बिहार की ही देन थे। अजातशत्रु तो वह थे ही, भारतीयता के सच्चे प्रतीक भी थे। और 'राजन्द्र' होते हुए भी जनमानस की पवित्रता और मृदुता के सच्चे मूर्त रूप थे।

उसी शृंखला मे आते है जयप्रकाश नारायण।

जब भारत क्रान्ति के द्वार की ओर बढ रहा था तो बिहार के उत्तर प्रदेश से लगी सीमा के निकट एक छोटे से कस्बे सिताबदियारा मे विजयादशमी के दिन 1902 मे जयप्रकाश का जन्म हुआ था। बिहार के शाहाबाद जिले मे यह छोटा सा कस्बा जब बसा होगा तो भिन्न-भिन्न जातियो के अलग-अलग मुहल्ले उसमे उग आए थे। कोई 20

टोलों में प्रदेश की सभी प्रमुख जातियों के परिवार यहाँ बसे हैं। वहीं पर एक छोटा सा टोला — 'लालटोला' है जहाँ कायस्थ परिवार रहते हैं। यही पर पुलिस दरोगा श्री देवकीनन्दन रहते थे। देवकीनन्दन की पत्नी की शादी के बाद बहुत दिनों तक जब सन्तान न हुई तो उन्होंने उस क्षेत्र मे सुप्रसिद्ध हरसू बाबा की मनौती मानी। उनकी शरण में पहुंच कर पुत्र-प्राप्ति की प्रार्थना की और जब पुत्र-जन्म हुआ तो हरसू बाबा के नाम पर बचपन में उन्हें हरसूदयाल कहा गया।

हरसूदयाल की प्रारम्भिक शिक्षा वही हुई और वे आगे चलकर नहर विभाग में जिलेदार के पद पर कार्य करने लगे। इन्ही हरसूदयाल की पत्नी फूलरानी थी जो फूल के समान सुन्दर और कोमल हृदय वाली थी। इन्हीं की गोद में 11 अक्तूबर, 1902 को जयप्रकाश आए। जयप्रकाश के छः भाई-बहन थे—3 भाई और 3 बहन। उनके बड़े भाई हरिप्रकाश तथा एक बहन का निधन बाल्यावस्था में ही हो गया। इस प्रकार जयप्रकाश को दुःख का आभास बचपन से ही रहा।

जब बालक थे तो बोलते कम थे, गुनते ज्यादा थे; इसीलिए इन्हें 'बूढ़ा बालक' कहा गया होगा। वैसे बचपन का इनका नाम था बउल जी।

20वी शताब्दी की शुरुआत भारत में उस वातावरण में हुई जिसमें ब्रिटिश हकूमत के विरुद्ध जज्बा बढ़ता जा रहा था। स्वनामधन्य बाल गंगाधर तिलक, अरविन्द, गोखले, मोहनदास कर्मचन्द गांधी, आदि महान नेता राष्ट्रीय मंच पर आ गए थे, साथ ही क्रान्तिकारियों की टोलियाँ भी देश भर में कार्य कर रही थी। जयप्रकाश में इन दोनों ही भावनाओं का सामंजस्य हुआ। एक ओर वह महान् क्रान्तिकारी हैं तो दूसरी ओर गांधी का सत्य और अहिंसा इनमे कूट-कूटकर भरा है।

जयप्रकाश जी की प्रारम्भिक शिक्षा कस्बे के स्कूल में ही हुई। इनके शिक्षक राष्ट्रीय विचारों से ओतप्रोत, विद्वान और संस्कारी थे। इनके पिताजी का तबादला होता रहता था। इसलिए इनका अपने पिताजी के साथ आना-जाना रहता था। जब पटना के कालिजिएट स्कूल में इन्होंने दाखिला लिया तब जाकर स्थिरता से शिक्षा हुई। पटना

मे उन 'दिनो 'सरस्वती भवन' ऐसा स्थान था जहाँ डा० राजेन्द्रप्रसाद आदि अनेक नेता रहते थे। यहीं पर जयप्रकाश जी की राजनीतिक शिक्षा का प्रारम्भ हुआ। तभी कुछ दिनो के बाद जब इनकी बहन व बहनोई पटना मे रहने लगे तो ये सरस्वती भवन से उनके वहाँ चले गए।

इनके बहनोई राष्ट्रीय विचारो के व्यक्ति थे इसलिए घर पर ही इनको मुक्त और स्वच्छन्द वातावरण मिला। 1919 मे इन्होने हाई स्कूल की परीक्षा प्रथम श्रेणी मे पास की और उसमें इन्हें छात्रवृत्ति भी मिली। उन्ही दिनो मुजफ्फरपुर और शाहाबाद मे क्रान्तिकारियो की गतिविधियाँ बढ रही थी। चम्पारन मे महात्मा गांधी ने सत्याग्रह चलाया था। देश मे स्वतन्त्रता के लिए एक ओर जहाँ शक्ति, साहस के प्रदर्शन द्वारा यत्न हो रहा था तो दूसरी ओर सत्याग्रह और अहिंसा का प्रयोग जारी था। जयप्रकाशजी को इन दोनो पक्षो के सम्बन्ध मे विचार-मथन करने और अपना मार्ग छाटने का अवसर मिला। विचारो में क्रान्तिकारी होते हुए भी इन्होंने महात्मा गांधी के विचारों को अधिक अच्छा और उचित माना। उस समय इन्होने खादी अपनायी और फैशनेबुल पोशाक को छोड़ कुर्ता, धोती पहने। जयप्रकाशजी बाद मे बिहार विद्यापीठ म भी पहुचे और बहुत अच्छे अको से इन्होने यही से विज्ञान विषयो से इण्टर की परीक्षा पास की।

प्रभावती का साहचर्य

जयप्रकाशजी के पिताजी भले ही आर्थिक रूप से सामान्य परिवार के रहे हो किन्तु उनकी योग्यता, विद्वता के कारण बिहार के उच्चकोटि के नेताओ से उनका और उनके परिवार का सम्पर्क बना रहा। अपने समय के बिहार के बे-ताज के बादशाह, बृजकिशोर बाबू को कौन नही जानता। देश के प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद के ये बुजुर्ग मित्रो मे से थे। 1921 से लेकर 1933 तक बृजकिशोर बाबू बिहार के सबसे बडे काग्रेसी नेता थे। उन्ही के निमन्त्रण पर महात्मा गांधी बिहार गए थे। जब इम्पीरियल कौंसिल का गठन किया गया तो बृज-किशोर बाबू पहले व्यक्ति थे जो गैर-सरकारी प्रतिनिधि के रूप मे

आसीन हुए। उनका समस्त जीवन राष्ट्र-प्रेम से ओत-प्रोत था और उन्होंने अपना जीवन अपने प्रदेश की उन्नति और आर्थिक विकास के लिए समर्पित कर दिया था।

संयोग की बात है कि एक बार बृजकिशोर बाबू राजेन्द्र बाबू के पटना स्थित निवास पर आए हुए थे, वहीं पर जयप्रकाश जी से उनकी पहली भेंट हुई। बृजकिशोर बाबू, जयप्रकाश जी की योग्यता और व्यक्तित्व से प्रभावित हुए और उनके मन में अपनी पुत्री प्रभा के लिए जयप्रकाश एक उपयुक्त वर जंच गए। राजेन्द्र बाबू ने जो बृजकिशोर बाबू को एक बुजुर्ग की भांति मानते थे, इस सम्बन्ध को पसन्द किया।

प्रभाजी वास्तव में सूर्य और चन्द्र दोनों की प्रभा थीं। सूर्य की इसलिए कि अपने परिवार में राष्ट्रीय भावनाओं से वह आच्छादित थीं। लड़की होते हुए भी लड़कों की तरह रहती थी। पोशाक भी लड़कों की ही तरह पहनती थी। और चन्द्रमा की इसलिए कि जीवन-पर्यन्त उन्होंने अपने पति जयप्रकाशजी को ऐसा साहचर्य दिया जो भारतीय नारियों के लिए आदर्श उपस्थित करता है। उनकी सरलता और फूल जैसा कोमल व्यवहार, साथ ही कठोर सिद्धान्तवादिता और सेवा भावना, बापू और बा के साथ रहने से उनको प्राप्त हुआ था। जिन दिनों प्रभावतीजी का विवाह निश्चित हो रहा था, वह जालन्धर कन्या पाठशाला का पाठ्यक्रम पूरा कर रही थी। अवस्था भी यही कोई 13-14 वर्ष। माता-पिता जयप्रकाश जैसे संस्कारी और योग्य वर को हाथ से नहीं निकलने देना चाहते थे। इसलिए विवाह भी जल्दी हो गया।

विवाह से पहले प्रभावतीजी ने साड़ी नहीं पहनी थी-यह एक ऐसी बात है जो आज के लोगों की समझ में नहीं आएगी। किन्तु है यह सच। उन्होंने विवाह के अवसर पर भी आभूषण पहनने से इन्कार कर दिया। बहुत कहने-सुनने पर एक मामूली सी चेन गले में पहनना स्वीकार किया। पिता के घर सम्पन्नता थी। नौकर-चाकर, अलग-अलग कामों के अलग-अलग परिसर रहते थे। किन्तु प्रभाजी कभी भी झाड़ू निकालते हुए अथवा माली के साथ काम करते हुए और चौके में तो प्राय: रोटी, दाल, सब्जी बनाते हुए देखी जा सकती थी। उनके

उच्च शिक्षा के लिए प्रयास

इण्टर की परीक्षा पास करने के बाद घर वालों की यह इच्छा हुई, जैसा कि उस समय प्राय: होता था कि जयप्रकाश काशी जाकर हिन्दू विश्वविद्यालय में दाखिला ले लें और उच्च शिक्षा प्राप्त करें। किन्तु, जयप्रकाश जी का स्वभाव अब ऐसा बन गया था कि वे किसी भी ऐसे शिक्षा संस्थान में नहीं जाना चाहते थे जहाँ पढ़ाई पर किसी प्रकार का सरकारी नियन्त्रण हो। उस समय वातावरण महात्मा गाँधी के राष्ट्रीय मंच पर आ जाने के बाद ऐसा चल रहा था कि राष्ट्रीय विद्यालयों में ही शिक्षा प्राप्त की जाय, थोड़ा भी सरकार से सम्बन्धित शिक्षण-संस्थाओं का बहिष्कार किया जाय। जयप्रकाशजी पर गाँधीजी के इस निर्देश का प्रभाव था, इसलिए उनका मन काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में जाने का न हुआ।

उस समय अमरीका का प्रजातंत्र भारत के युवकों में आकर्षण का केन्द्र बना हुआ था। सोवियत रूस का भारत के जन-मानस पर तब स्पष्ट चित्र नहीं बन पाया था। उस समय तक अमरीका का लोकतंत्र और स्वतंत्रता के प्रति निष्ठा आकर्षक रूप से संसार पर छायी हुई थी। जयप्रकाशजी का मन अमरीका जाने का हो रहा था। पूरी तैयारी के साथ वे कलकत्ता पहुँचे। जिस दिन जलयान से यात्रा शुरू होने की बात थी, कलकत्ता में उनके कुछ सम्बन्धियों ने इस प्रकार के समाचार पत्र दिखलाये जिनसे अमरीका में जयप्रकाशजी को कठिनाइयों का ही सामना करना पड़े, इस बात के संकेत मिलते थे। अन्ततोगत्वा जयप्रकाश जी घर लौट आये। उनका जो मित्र साथ जाने वाला था वह अमरीका चला गया। उसने अमरीका से उन कठिनाईयों के बारे में, जिनके कारण जयप्रकाशजी की यात्रा स्थगित हो गई थी, लिखा कि वे सब निर्मूल थी। उस मित्र ने स्पष्ट लिखा कि अमरीका में कोई खास दिक्कत नहीं है। विद्यार्थियों को अपना खर्च चलाने के लिए काम भी मिल ही जाता है। इस प्रकार जयप्रकाशजी के मन में जो गाँठ थी, वह खुल गई और 16 अगस्त 1922 को वे कलकत्ता पहुँचे। उसी दिन जलयान से वह अमरीका के लिए रवाना हो गये। उनका रास्ता जापान होकर था। वहाँ

होते हुए 8 अक्टूबर को वे केलिफोर्निया पहुँचे। जैसा कि स्वाभाविक था, जयप्रकाशजी को कुछ ही दिनो मे अपने देश भारत की याद आने लगी। तब उन्होने वहाँ रहने वाले भारतीयो के सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त की। वहाँ एक 'नालन्दा क्लब' के नामसे सस्था थी। इसी माध्यम से उनका भारतीयो से परिचय हुआ। धीरे-धीरे उनका मन वहाँ लगने लगा।

विश्वविद्यालय का सत्र जनवरी से प्रारम्भ होने वाला था। उसमे अभी 3 महीने शेष थे। जयप्रकाश जी के पास अर्थ की बहुत सुविधा नही थी। इसलिए उन्होंने वहाँ कुछ धन एकत्र करने के लिए समय का उपयोग किया। केलिफोर्निया मे बहुत से भारतीय खेती-बाडी कर रहे थे। उनमे से एक अगूर के बाग में उन्हें काम मिल गया। उन्हें आठ घण्टे काम करना पडता था और उसके लिए उन्हें 4 डालर प्राप्त होते थे। उन्होने न छुट्टी की परवाह की और न कोई खल-तमाशो की। डटकर काम करने लगे और अपना खर्च बहुत किफायत से चला लेते थे। लगभग 80 डालर हर महीने उन्होने बचाया। यह कार्य उन्हें शेरखा नामक एक मुस्लिम भाई के सहयोग से प्राप्त हुआ था। जयप्रकाशजी इस भाई के साथ ही रहते भी थे। उनके प्रभाव के कारण शेरखा की रसोई मे उन दिनो गोमास न तो पका और न खाया गया।

केलिफोर्निया का यह विश्वविद्यालय भारतीय विश्वविद्यालयो की अपेक्षा बहुत बडा था। एक नगर की तरह यह अलग से बसा था जिसमे 20 हजार से भी अधिक विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते थे। जयप्रकाशजी ने इस विश्वविद्यालय मे दाखिला ले लिया। अमरीका मे भारत की अपेक्षा किफायत से रहने पर भी बहुत अधिक खर्च आता था। जय प्रकाशजी की आर्थिक स्थिति कमजोर थी। उन्होने फिर काम किया और अपना खच चलाने के लिए कभी यह न समझा कि कोई काम छोटा या ओछा है। अमरीका मे वातावरण भी ऐसा था कि वहाँ काम करने को बुरा नही माना जाता। फिर भी वे इतना नही कमा पा रहे थे कि इस मँहगे विश्वविद्यालय मे रह सकें। इसलिए इयोवा विश्वविद्यालय मे प्रवेश ले लिया। यहाँ उन्होंने भारतीय छात्रो के साथ ही अपने रहने

की व्यवस्था की और कम से कम खर्च में रहना शुरू किया। यहाँ तक कि अपना भोजन भी स्वयं अपने हाथ से बनाने लगे। इतना होते हुए भी उन्हें अपना खर्च पूरा करने के लिए छोटे-मोटे काम करने पड़ते थे। विश्वविद्यालय से वे शहर की ओर चले जाते। वहाँ घरों में फर्नीचर पर पालिश करना, सफाई आदि के साथ सर्दी के दिनों में पड़े हुए बर्फ के ढेरों को हटाना आदि काम उन्होंने किये। सच तो यह है कि शौचालय साफ करने के अलावा उन्होने किसी काम को करने से आनाकानी नहीं की। यही कारण है कि वे अपने साथियों में लोकप्रिय हो गये। इसलिए भी कि वे बहुत कुशाग्र बुद्धि थे, पढ़ाई में प्रथम ही रहा करते थे। अपने बड़े-बड़े प्रोफेसरों की निगाह में भी वे चढ़ गये।

'जयप्रकाश नारायण' नाम प्रोफेसरों के लिए बोलना कठिन था, इसलिए वहीं पर उनका नाम जे०पी० पड़ गया जो आज तक लोकप्रिय रहा है। कुछ दिनों बाद वे विसकोसिन विश्वविद्यालय में पहुँच गये। इस विश्वविद्यालय में विद्यालय अध्यक्ष समाजवादी विचारधारा के समर्थक थे। जे०पी० उन्ही के विद्यार्थी थे।

समाजवादी जे०पी० का मानस यही समाजवाद में पक गया। पैसों की दिक्कत उन्ह सदा ही बनी रही। 1924 में जब वे विसकोसिन विश्वविद्यालय में थे तो उन्होंने होटल और रेस्तरांओं में प्लेटें साफ करने का काम भी किया। यहीं उन्होंने लेनिन, कार्ल मार्क्स आदि समाजवादी लेखकों का अध्ययन किया। कैसे आश्चर्य की बात है कि विज्ञान के विद्यार्थी जे०पी० समाजशास्त्र की ओर झुक रहे थे। एक बार रूस जाने का प्रसंग भी उनके सन्मुख आया किन्तु तभी वे बीमार पड़ गये। नतीजा यह निकला कि मेहनत मजदूरी करके वे पैसा इकट्ठा न कर पाये और उनका जाना स्थगित हो गया।

इस बीमारी के कारण उनका हाथ पैसे से बिल्कुल खाली हो गया था और विवशता में इन्हें अपने पिता को लिखना पड़ा। पिता के पास भी अर्थ की सुविधा न थी। इन्होंने अपने खेत रहन करके कुछ रुपये भेजे जिससे कुछ राशि मिल जाने पर ही इन्होने ओह्यो विश्वविद्यालय से एम०ए० की परीक्षा पास की। अब इनका मन स्वदेश लौटकर अपने

देश के उत्थान के लिए काम करने की इच्छा से भर गया। परन्तु लौटें कैसे ? पास मे किराये के लिए पैसे नही थे। उन्ही दिनो इनके एक भारतीय मित्र ने भारत लौटने के लिए लन्दन तक व्यवस्था करने का आश्वासन दिया। इस प्रकार ये लन्दन पहुँच गये। पर जब तक ये कुछ कमा पाते, इनका भारतीय मित्र स्वदेश लौट गया और ये लन्दन मे रुक गये। ब्रिटेन मे उन दिनो डा० राधाकृष्णनन् आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय मे प्रोफेसर थे, उनके अलावा और भी अन्य भारतीयों के सम्पर्क मे ये वहाँ आये। लन्दन मे कमाने की बहुत व्यवस्था न हो सकी। बहुत मजबूर होकर इन्होने अपने पिता को फिर रुपया भेजने के लिए लिखा। पिता और घर वाले कब से इनके स्वदेश लौटने की बाट जोह रहे थे। इन्हें रुपया भेजने के लिए पिता को अपनी जमीन गिरवी रखनी पडी। जैसे ही रुपया मिला ये कोलम्बो होते हुए भारत के लिए रवाना हो गये। अक्टूबर 1922 में ये भारत से गये थे और सात वर्ष बाद सितम्बर, 1929 मे ये स्वदेश लौट आये। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए जो श्रम जे०पी० ने किया वह आज के नौजवानो के लिए एक उदाहरण प्रस्तुत करता है।

राजनीति की ओर

20 वीं शताब्दी की दूसरी दशाब्दी का समय बडा विचित्र था, सदियों की गुलामी ने देश मे जो निराशा पैदा की थी उसे दूर करने का यत्न महात्मा गाँधी कर रहे थे। क्रान्तिकारी नौजवान भी अपना हक अदा कर रहे थे। देश करवट ले रहा था किन्तु सामाजिक रूढियो का बोलबाला था। अत जब जयप्रकाशजी समुद्र पार से लौटे और सात वर्ष रहकर लौटे तो उनके कर्मकाण्डी परिवार का उन्हे शुद्ध करने की इच्छा होना स्वाभाविक था। जयप्रकाश जी के लिए उस रूढिवादी कर्मकाण्ड के प्रति समर्पण आश्चर्य की बात थी। किन्तु अपने उन माता पिता की इच्छा का पालन करना उन्होंने स्वीकार किया जो उनके जनक और जननी तो थे ही अपितु जिन्होने उनकी अच्छी शिक्षा-दीक्षा के लिए अपनी सबसे प्रिय भूमि को भी गिरवी रख दिया था।

जयप्रकाश जी बचपन से ही राष्ट्रीय वातावरण मे रह रहे थे।

अमरीका जाकर और समाजवादी शिक्षण प्राप्त कर इनके अन्दर राज-नीतिक जीवन का आकर्षण घर कर गया। फिर भी 7 वर्ष के बाद घर लौटे थे। इसलिए कुछ दिन घर ही रहना चाहते थे। किन्तु संयोग ऐसा हुआ कि तभी बिहार प्रदेश कांग्रेस का सम्मेलन मुंगेर में हुआ, उसके अध्यक्ष थे डा० राजेन्द्र प्रसाद। इस सम्मेलन में सरदार बल्लभ भाई पटेल भी सम्मिलित हुए थे। तब तक कांग्रेस ने पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया था और उस मसले पर युवा वर्ग और बुजुर्गों में खींच-तान चल रही थी। युवा वर्ग के नेता थे पं० जवाहरलाल नेहरू, जो युवा इच्छा-आकांक्षाओं के प्रतीक बनते जा रहे थे। मुंगेर में जवानों की टोली ने स्पष्ट कर दिया कि वह पूर्ण स्वराज्य से कम कुछ भी स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं। नेताओं का कहना था कि जल्दबाजी में कोई कदम उठाना उचित न होगा। अन्त में दोनों विचारों के प्रस्तावों पर मतदान हुआ और जवानों की जीत हुई। जे० पी० स्वभावतः युवाओं के साथ थे।

उनका प० जवाहरलाल नेहरू से मिलन कुछ समय बाद हुआ। वर्धा में कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक थी। यह लाहौर कांग्रेस से पहले की बात है। जयप्रकाश जी उस समय वर्धा में थे। कार्यसमिति की बैठक के बाद जवाहरलाल जी युवक जयप्रकाश की ओर बढे। यह था दोनों नेताओं का प्रथम मिलन। धीरे-धीरे दोनों एक दूसरे की ओर आकर्षित होते चले गये और कुछ ही दिनों बाद जब श्री जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में लाहौर कांग्रेस का अधिवेशन हुआ तो जे० पी० और नेहरू जी में काफी विचार-विमर्श के बाद यह निश्चय हुआ कि जयप्रकाश जी सक्रिय रूप से राष्ट्रीय आन्दोलन में आयेंगे और कांग्रेस का कार्य करेंगे। जे० पी० से नेहरू जी ने इलाहाबाद आने का अनुरोध किया और इस प्रकार वे कांग्रेस के सदर मुकाम आनन्द भवन में जो बाद में स्वराज्य भवन हो गया कांग्रेस के श्रमिक विभाग के सचिव के रूप में वे कार्य करने लगे। जे० पी० से कार्य-विधि के सभी नेता प्रसन्न थे और श्रमिक वर्ग का कार्य जो अब तक एक प्रकार से किया ही नहीं गया था, अब विधिवत होने लगा था। कुछ ही समय बाद जब जे० पी

कांग्रेस के स्थायी मन्त्री पद पर आसीन हुए, उन दिनों बिहार में आन्दोलन तेजी पकड़ रहा था। उसका संचालन बृजकिशोर बाबू कर रहे थे। बृजकिशोर बाबू की गिरफ्तारी के बाद बिहार का यह आन्दोलन उत्तर प्रदेश मे आ गया और इसका संचालन जे० पी० ने ही किया।

इसी बीच साबरमती मे नमक सत्याग्रह शुरु हुआ। नमक सत्याग्रह ने देश मे ऐसी राष्ट्रीय चेतना जगायी कि जिसकी तत्कालीन शासकों को कल्पना भी नहीं थी। देश भर म गिरफ्तारियों का दौर शुरु हुआ। विदेशी सत्ता घबरा गई और करांची कांग्रेस के अधिवेशन से पहले ही दिवाली से कुछ दिन पूर्व तत्कालीन वायसराय ने महात्मा जी से समझौता किया जो गांधी अर्विन करार के नाम से प्रसिद्ध है। कांग्रेस बन्दी रिहा कर दिए गए और कांग्रेस पर लगा प्रतिबन्ध भी हटा लिया गया।

जे० पी० अगले आन्दोलन की योजना बना ही रहे थे कि उनके पिता पर फालिज गिरने का दुखद समाचार उन्हे मिला। तत्काल वे गाँव चले गए। उनके पिता की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी नही थी। साथ ही बीमारी के कारण और भी कठिनाइयाँ सामने आ गई। ऐसे अवसर पर निश्चय ही परिवार वाले यह आशा करते थे कि उच्च शिक्षा प्राप्त जे० पी० घर का खर्च चलाने के लिए कुछ करेंगे। उनका मन बडी दुविधा मे था। एक ओर वे देश का काम करना चाहते थे तो दूसरी ओर घर की जिम्मेदारी से भी मुँह नही मोडना चाहते थे। इस सम्बन्ध मे उन्होने एक लम्बा पत्र गांधी जी को लिखा। महात्मा जी ने प्रसिद्ध उद्योगपति श्री घनश्यामदास बिरला को लिखा कि जयप्रकाश जैसे अनुभवी और सुलझे व्यक्ति को उन्हे काम देना चाहिए। तत्काल ही जे० पी० बिरला जी के सचिव के पद पर नियुक्त हो गए। बिरला परिवार और उनके काम-धन्धे के निकट सम्पर्क मे आने के बाद जयप्रकाश जी का मन हटने लगा। कहाँ तो वे देश के कमजोर वर्ग के लिए काम करना चाहते थे, कहाँ उन्हे लगने लगा कि वे एक धनिक के लिए कार्य कर रहे हैं। वैसे जो काम जे० पी० करते थे उस समय बहुत अच्छे कामो मे समझा जाता था। पर छ महीने मे ही वह उस नौकरी से

मुक्त होकर कांग्रेस की सेवा में फिर आ लगे। यह वह समय था जब जे० पी० ने अपना मन पूरी तरह से स्थिर कर लिया था और वे देश के काम में ही पूर्णरूपेण लग गए। वे धीरे-धीरे कांग्रेस के प्रगतिशील आन्दोलन के साथ जुड़ते चले गए।

बम्बई में होने वाली कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक में भाग लेने के लिए नेहरु जी के साथ इलाहाबाद से जे० पी० बम्बई गए। सरकार का दमन-चक्र फिर शुरु हो गया था। नेहरु जी को बम्बई पहुँचने से पहले ही गिरफ्तार कर लिया गया। कांग्रेस पर भी पाबन्दी लगा दी गई। श्रीमती सरोजनी नायडु कांग्रेस की अध्यक्ष चुनी गईं। उनसे मिलने के लिए ज० पी० जब चले तो पहली बार उन्होंने वेश बदला। क्योंकि सरकार उन्हें असली रूप में जाने नहीं देना चाहती थी। और इस प्रकार प्रथम बार जे० पी० बहुरूपिया बने। यहाँ हम 1932 के आन्दोलन का थोडा सा जिक्र करना चाहेंगे। चांदनी चौक, दिल्ली में जो कांग्रेस अधिवेशन हुआ था उसकी पूरी तैयारी जे० पी० की देखरेख में ही हुई थी। वे सरकार की निगाहों में आ गए थे इसीलिए मजबूर होकर दिल्ली छोड़ बनारस जाना पड़ा।

एक डेढ़ वर्ष और निकला तभी 15 जनवरी 1934 को बिहार में जबर्दस्त भूकम्प आया। मुंगेर, मुजफ्फरपुर आदि क्षेत्रों में बड़ी भारी तबाही हो गई। डा० राजेन्द्र प्रसाद बीमारी की हालत में भी राहत कार्यों में लग गए। इस कार्य में जे० पी० ने बहुत बड़ा सहयोग दिया। वस्तुत: राजेन्द्र बाबू के साथ राहत कार्यों के वे प्रमुख नेता बन गए और मंत्री पद पर कार्य करते रहे।

राहत कार्यों से फुर्सत पाकर जयप्रकाश जी फिर राजनीति की ओर उन्मुख हो गए। उनकी मन:स्थिति धीरे-धीरे कांग्रेस में समाजवादी विचारधारा की ओर प्रवृत्त हो गई। 17 मई, 1934 को पटना में उन्होंने एक विराट समाजवादी सम्मेलन का आयोजन किया। समाजवादी आन्दोलन की दिशा में यह एक महत्वपूर्ण पग था। इस सम्मेलन की अध्यक्षता आचार्य नरेन्द्रदेव ने की। देश के प्राय: सभी भागों से समाजवादी विचारधारा के समर्थक लोग इस सम्मेलन में सम्मिलित

हुए। जयप्रकाश जी इस सम्मेलन के महासचिव थे। अतः समाजवादी विचारधारा को व्यापक रूप से प्रसारित करने मे इनकी प्रमुख भूमिका रही। जब 6 महीने मे ही समाजवादी कार्यक्रम काफी आगे बढ़ गया तो दिसम्बर 1934 मे डा० सम्पूर्णानन्द जी की अध्यक्षता मे प्रथम कांग्रेस समाजवादी सम्मेलन सम्पन्न हुआ। उसके बाद देश मे कांग्रेस के मुख्य मच के साथ-साथ समाजवादी मच आगे बढने लगा। जनवरी, 1936 मे मेरठ मे दूसरा समाजवादी सम्मेलन हुआ और अगले वर्ष 1937 में फैजपुर कांग्रेस के साथ-साथ फैजपुर मे हुआ। समाजवादी आन्दोलन के जन्मदाता स्वय जयप्रकाश जी इसके अध्यक्ष थे। 1938 मे श्री मीनू मसानी की अध्यक्षता मे लाहौर मे समाजवादी सम्मेलन सम्पन्न हुआ। इस आयोजन के समस्त कर्त्ता-धर्त्ता और महासचिव जे० पी० थे।

इतिहास बतलाता है कि जब फरवरी 1937 मे विभिन्न विधान सभाओ के चुनाव हुए और कांग्रेस ने विजय प्राप्त कर विभिन्न प्रान्तों मे सत्ता सम्भाली तब कांग्रेस के साथ समाजवादी विचारधारा वाले लोगो का मतभेद हो गया।

श्रमिक सगठन तो जे० पी० के कार्यक्रम का मुख्य अग था ही, अब उन्होने किसानो की ओर भी ध्यान देना शुरु किया और सबसे पहला सम्मेलन अखिल भारतीय किसान सम्मेलन के नाम से आचार्य नरेन्द्र-देव की अध्यक्षता मे सम्पन्न हुआ। जे० पी० चाहते थे कि किसान, मजदूर जो इस देश के सबसे पिछडे हुए वर्ग हैं, उनमे चेतना लाई जाय। तब देश को विदेशी सत्ता से स्वतन्त्र कराना बहुत सहज होगा और देशोत्थान भी मनोनुकूल हो सकेगा। देश के छोटे-बडे सभी सगठनो को मिलाकर और भूतपूर्व राष्ट्रपति श्री वी० वी० गिरि के सहयोग से अखिल भारतीय मजदूर सघ का गठन किया गया।

ब्रिटिश सरकार ने जिस प्रकार से राष्ट्रीय और राजनैतिक नेताओं को जेलो मे डाला, जे० पी० उससे कैसे बच सकते थे? ये कई बार जेल गए। ये यह नही चाहते थे कि देश की और विशेषकर राजनीतिक दलों की एकता नष्ट हो। इसलिए जब लाहौर मे 1938 मे समाजवादी दल का सम्मेलन हुआ तो दल के लाल झण्डे के साथ-साथ कांग्रेस का तिरगा

झंडा भी फहराया गया था।

1939 मे द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ हो गया था। और देश मे एक बेचैनी फैल रही थी। तत्कालीन अंग्रेज सरकार चाहती थी कि भारत जन-धन तथा समस्त साधनों के साथ युद्ध में मित्र राष्ट्रों की सहायता करे। किन्तु जन-मानस यह चाहता था कि जब तक भारत की स्वतन्त्रता की माँग मजूर नही कर ली जाती, तब तक भारत दूसरे की युद्धाग्नि में अपने आपको क्यों भूने ? जयप्रकाश जी का स्पष्ट मत था कि जब तक हमारी आजादी की शर्त नही मान ली जाती, तब तक विदेशी सरकार हमसे सहयोग की अपेक्षा कैसे कर सकती है ? उन दिनों नेताजी सुभाष चन्द्र बोस भी कांग्रेस की ढीली नीति और देश को शीघ्र आजाद कराने के लिए किसी निश्चित कार्यक्रम के अभाव में कांग्रेस से अप्रसन्न थे। उनकी निश्चित धारणा थी कि स्वाधीनता का लक्ष्य शीघ्रताशीघ्र प्राप्त हो। उसके लिए हर सम्भव उपाय काम मे लाए जाने चाहिए। नेताजी ने कुछ वर्ष पहले ही कांग्रेस अध्यक्ष पद भी मुख्यतः इसी कारण छोड़ा था और उन्होंने एक नए फारवर्ड ब्लाक दल का गठन किया था।

राजनीति की इस ऊहापोह में कम्युनिस्ट पार्टी के सर्व श्री ए० के० गोपालन, जी० सुन्दरैया, ई० एम० एस० नम्बूदरीपाद तथा पी० रामा मूर्ति जैसे वरिष्ठ कम्युनिस्ट नेताओं को जे० पी० ने कांग्रेस समाजवादी दल में शामिल कर लिया। इससे असंतुष्ट होकर सर्व श्री डा० राम-मनोहर लोहिया, अच्युत पटवर्धन, मीनू मसानी तथा अशोक मेहता जैसे नेताओं ने कांग्रेस समाजवादी दल की सदस्यता से त्याग-पत्र दे दिया।

जेल-के पिंजरे में : रोमांचक फरारी

1940 मे चाईवासा के एक समारोह में एक भाषण के कारण सरकार ने जे० पी० को जमशेदपुर जेल मे भेज दिया। बाद मे ये देव साली जेल में भेज दिए गए। इस गिरफ्तारी पर महात्मा गांधी और पं० जवाहरलाल नेहरु ने बड़ा आक्रोश प्रकट किया। गांधी जी ने तो जयप्रकाश जी को अपने लेख में 'समाजवाद का आचार्य' और 'जन्म-जात योद्धा ही बतलाया।

देवलानी जेल की एक हृदयस्पर्शी घटना का उल्लेख करना उचित होगा। सदा की भांति प्रभावती जी जे० पी० से भेंट करने जेल में पहुँची। ज०पी० में मार्क्सवाद और गांधीवाद का संगम है तो प्रभा जी विशुद्ध गांधीवादी थी। इस घटना से यह और भी स्पष्ट हो जाता है।

जब मुलाकात होती थी तो पास ही खुफिया पुलिस का एक अफसर भी बैठा रहता था। इस मुलाकात के समय भी वह मौजूद था।

प्रभावती जी ने पहुँचते ही पूछा तबियत कैसी है ? अच्छे हैं न आप।

उन दिनों जयप्रकाश जी का स्वास्थ्य बहुत अच्छा नहीं चल रहा था, इसी कारण यह प्रश्न पूछा गया था।

—सब ठीक है तुम तो ठीक हो न। ज० पी० ने उत्तर दिया।

—हां ठीक हूँ किसी चीज की जरूरत तो नहीं ? प्रभा जी ने पूछा।

—जे० पी० ने कहा चप्पल टूट गई है दूसरी चाहिए।

प्रभा जी बोली—उसके लिए आपके पैर के नाप की जरूरत होगी।

—नाप मैं ले आया हूँ, यह लो। ज० पी० ने कहा।

फिर खुफिया पुलिस वाले की ओर मुखातिब होकर वे बोले देख लीजिए कागज दे रहा हूं इसमें पैर का नाप ही है और कुछ नहीं है।

वह उसे देखने लगा कि इतनी देर में कागजों का एक पुलिन्दा प्रभावती जी की गोद में आ गिरा। इसमें क्रांति की प्रेरणा के लिए सामग्री थी। बहुत से मित्रों के लिए पत्र और क्रांति की योजना।

प्रभावती जी ठहरी गांधीवादी। वह उस पुलिन्दे को छिपाकर बाहर ले आना अनैतिक समझती थी। उन्होंने उसे सामने मेज पर रख दिया।

खुफिया पुलिस के अफसर ने फौरन उसे उठा लिया। और बाद को उसका कितना बतंगड़ सरकार ने बनाया कि दो दिन बाद 18 अक्टूबर 1941 को देश के प्राय सभी अखबारों में यह खबर सरकार ने छपाई कि ज० पी० के हिंसात्मक आन्दोलन और विप्लव की योजना सरकार ने पकड़ ली।

गांधी जी ने उस पर टिप्पणी करते हुए जयप्रकाश जी को अहिंसक क्रान्ति का द्रष्टा कहा था।

बाद में इसी जेल मे जे० पी० ने दो मांगों को लेकर भूख-हड़ताल की। एक तो यह कि सभी रखे बन्दियो को ए-क्लास मिलना चाहिए और दूसरा यह कि व्यक्तियों को उसी जिले के जेलखाने में रखा जाय।

इनकी मांगे पूरी हुई और इन्हें हजारी बाग जेल में स्थानातरित कर दिया गया।

इसी बीच 25 हजार से ज्यादा लोगों को युद्ध-विरोधी प्रचार के आरोप मे बन्दी बनाकर जेल मे ठूंस दिया गया है, बाहर से इस प्रकार की जो खबरें आ रही थी वे बड़ी रोमांचक थी। जयप्रकाशजी का मन इस निर्णय की ओर जा रहा था कि वर्तमान समय जेल से बाहर देश में काम करने का है, जेलो में रहने से कोई लाभ नही है। इसलिए जेल से बाहर जाने के उपाय खोजने लगे। दरअसल उसी हजारीबाग जेल से फौज में बगावत करने के अपराध में गण्डासिंह सजा भोग रहा था। उसने अपने साथी सुच्चासिंह से मिलकर जेल से भागने का कार्यक्रम बनाया। जेल की दीवार को फांद कर कूदते हुए कई लोग तो बाहर निकल गये लेकिन 2 व्यक्ति फँसे रह गये। दीवार के ऊपर से कूदने के कारण लोगों को बहुत चोटें आयी थी और जंगल की बीहड़ों मे कितने कष्ट उन्होने झेले होंगे, इसकी भी कल्पना की जा सकती है।

सुच्चासिंह को फिर गिरफ्तार कर के उसी जेल मे डाल दिया गया था। यही पर जयप्रकाशजी को सुच्चासिंह ने अपने फरार होने की दास्तान सुनायी थी।

जयप्रकाशजी ने इससे प्रेरणा लेकर अपने कुछ निकट के सहयोगियों से भागने की योजना बनायी। योजना बन ही रही थी कि एक नया जेलर आ गया और कुछ ऐसा संकेत मिला कि मानो उन पर सन्देह किया जाने लगा है। इसलिए जेल की सुरक्षा व्यवस्था में कुछ परिवर्तन भी किये गये। इस प्रकार पहली योजना निरस्त हो गई।

बाहर की दुनिया की जो खबरें आ रही थी वे रोंगटे खड़े कर देने

वाली थी। अगस्त क्रान्ति के नाम पर जरा-जरा से बहाने करके निरीह व्यक्तियो को गोलियो से उडाया जा रहा था। अग्रेज सैनिक अधिकारी मनमानी कर रहे थे और जयप्रकाशजी का हृदय जेल की दीवार मे बन्द उफान ले रहा था। अन्त मे दशहरे के दिन भागने की योजना बनाई गई। पर उस दिन भी किसी कारण से योजना सफल न हो सकी। तब दीपावली का दिन निश्चित किया गया और पलायन काण्ड के साथी निश्चित हुए—योगेन्द्र शुक्ल, सूर्य नारायणसिंह, गुलाबचन्द्र उर्फ गुलाली, रामनन्दन मिश्र, सालिगरामसिंह और जे०पी०। दीपावली के दिन जेल मे बहुत से उत्सव आयोजित किये गये थे। खूब सजधज से सगीत का कार्यक्रम बना था। रात को रोशनी होगी, बैडमिटन खेला जायेगा अथवा ताश का खेल होगा, इस प्रकार विशद चर्चा हो रही थी। निश्चय किया गया कि 42 की क्रान्ति के नाम पर 42 दीयो का जलूस जेल मे निकाला जायेगा।, जो हर वार्ड मे घूमेगा। "दीपावली फिर आ गई सजनी" गाना भी गाया जायेगा। यह सब कार्यक्रम दिन भर चल रहा था। कैसा सयोग है कि उस दिन दिन मे किसी ने यह गाना भी गाया था।

"वह हिन्द का जिन्दा काप रहा है गूँज रही हैं तकबीरें।
उकताये हैं शायद कुछ कैदी और तोड रहे है जजीरें।।"

जयप्रकाशजी और दिन देर से जागा करते थे। पर उस दिन खूब जल्दी उठ गये। आँखे धसी हुई सी थीं। 8-10 दिन से हजामत नहीं बनी थी, आगे का दाँत टूटा हुआ था, देखने मे कमजोर और बीमार लग रहे थे। उधर जेल भर मे दीपावली का जश्न शुरु हो गया था और इधर होने वाले नाटक के सभी अभिनेता धीरे-धीरे बतिया रहे थे। किस प्रकार दीवार फाद कर बाहर जाना, फिर किस प्रकार ग्रामीण वेश मे जगल पार करना और फिर स्टेशन पर पहुँचने पर किस प्रकार सूरत बदलना आदि। उस सब के लिए कपडो की व्यवस्था और खाने-पीने का इन्तजाम कर लिया गया। कुछ नकद रुपये भी ले लिये गये।

शाम हुई अधेरा आया। तभी एक नेताजी के पेट मे भयानक दर्द उठा। डाक्टर और जेल के अधिकारी उधर लग गये। उस पेट की

बीमारी के कारण जेल अधिकारियों का ध्यान पूरी तरह उधर ही लग गया और योजना के अनुसार धोती की रस्सी बनाकर छः लोग छः मिनट में दीवार के उस पार कूद गये। रात में किसी को कुछ पता न लगा क्योंकि दीपावली के दीयो का जलूस कभी 'बाबू वार्ड' में तो कभी 'पंजाबी वार्ड' मे घुमाया जा रहा था। जयप्रकाशजी 'छोकरा वार्ड' में थे। जब जलूस उधर जाने लगा तो एक साथी ने एक साथ आगे बढ़कर उन्हें रोका और कहा कि जे०पी० के पेट का अलसर आज बड़ा कष्ट दे रहा है और उनकी साइटिका भी परेशान कर रही है, अभी आँखें लगी हैं। उधर जाना उचित न होगा।

सुबह होने पर एक बड़ा जेल अधिकारी जयप्रकाशजी से मिलने आया। तब जाकर पता चला कि जे०पी० वहाँ नही हैं। चारों ओर तलाश शुरू हो गई। हर वार्ड, गुसलखाने यहाँ तक कि संडास में भी तलाशी ली गई 'पगली' घंटी बज उठी। सब की हाजिरी लेने पर पता चला कि जे०पी० सहित 6 बन्दी भाग गये हैं। हजारीबाग जेल की सबसे ऊँची दीवार पर तेज रोशनी लगी है। उससे कई मील दूर तक जंगल मे देखा जा सकता है। जेल से निकलकर जब फरार कैदी बाहर दौड़ रहे थे तो उन्हे उस रोशनी से बचने के लिए झाडियों मे होकर निकलना पड़ रहा था। इसलिए सब के पैर घायल हो रहे थे और कपड़े फट रहे थे। पर भागने-दौड़ने के अलावा और कोई उपाय नही था। पास ही कहीं सुबह के झुटपुटे में शेर के गुर्राने की आवाज सुनायी दी। पर उस समय इन फरारियों को शेर का डर कम, आदमी का डर अधिक था। ज्यादा देर नही रुक सकते थे। तेज चलते हुए गन्दे पानी से भरे एक गड्ढे में गिर गये और नवम्बर की अमावास्या की रात को जब सर्दी की हवा साँय-साँय चल रही थी, छः साथी भीग गये। पर रुकना उनका काम नहीं था। चले बिना कोई उपाय नही था। गीले, काँपते आगे बढ़े।

रामनन्दन मिश्र सिगरेट पीते थे। संयोग से जेब में दियासलाई गीली न हुई थी। सूखे पत्ते इकट्ठे करके जलाये गये। कपड़े सुखाने की कोशिश की गई और थोड़ी देर के लिए सोने का यत्न किया, पर भगोड़ों को
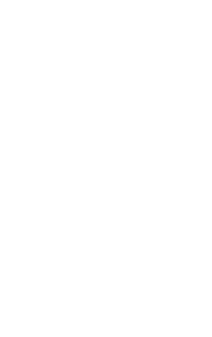
की। दुबेजी ने बतलाया कि आप लोगों के भागने का शोर चारों ओर मचा हुआ है। गांव मे जाने पर अगर किसी ने पहचान लिया तो पुलिस को उसका पता चल जायेगा। इसलिए अच्छा यही है कि घर से खाना आदि यही खेत पर मगा लिया जाय। यही हुआ भी। चूड़ा, दही, खाना सबकुछ जंगल में मंगाया गया। दुबेजी ने 100 रुपये का नोट भी तुडा दिया। उसमें से 40 रुपये के देहाती कपड़े खरीदे गये। तब जंगल में जाकर दो दिन के बाद छहो साथियों ने पेट भरकर भोजन किया।

जयप्रकाशजी के पांवों की हालत बडी खराब थी इसलिए दुबेजी ने एक बैलगाड़ी का प्रवन्ध कर दिया। जिसमें तीन घायल व्यक्तियों को लिटाया गया और बाकी तीन कन्धों पर कुल्हाडी रखे गंवई-गांव वालों की तरह चले। दिन और रात उस गाड़ी में ही निकल गई। जिले की सीमा आ गई थी इसलिए यह निश्चय किया गया कि दल दो गुटों में बंट जाए। एक में रहे जयप्रकाश, रामनन्दन और सालिगराम और दूसरे मे योगेन्द्र शुक्ल, सूरज और गुलाली। तय हुआ कि पहला दल यहां से सीधा बनारस जाय और दूसरा उत्तर बिहार। बनारस में पहला दल कहां ठहरेगा यह भी तय किया गया और निश्चय किया गया कि दूसरा दल घूमते-फिरते बनारस में पहले दल से जा मिलेगा। ठेठ देहाती पोशाक में जयप्रकाश जी और उनके दो साथी आगे बढ़े। बोधगया और फल्गू नदी पार की गई। रात में चलने से यह डर था कि लोग उन्हें चोर-डाकू समझेंगे। इसलिए छोटी सी दुकान में रात का डेरा डाला गया। जयप्रकाशजी ने अपने हाथ से लिट्टी पकाई और घी में डुबो-डुबो कर सुस्वाद भोजन किया। सुबह उठे तो फिर यात्रा प्रारम्भ हो गई। शाम को एक गांव में पहुँचे तो वहां पर एक सम्पन्न परिवार मे रामनन्दन की ससुराल थी। निश्चय किया गया कि गांव के बाहर तालाब पर जयप्रकाशजी और रामनन्दन बैठें। सालिगराम गांव उनके ससुराल के घर जायं। योजना ठीक रही। रामनन्दनजी की ससुराल वाले अन्धेरे मे उन सब को घर ले आए और तीन दिन तक वहां खूब मेहमानदारी हुई। तब तीनों ने बहुरूपियों की तरह, तरह-तरह के रूप भरे। जयप्रकाशजी ने सर मुंडवा लिया। यहीं से फिर बैलगाड़ी में

रवाना हुए। गया पार किया और भाग्य से सैनिक अड्डा भी पीछे छूट गया। रामनन्दनजी की ससुराल से काफी पैसे और सामान ले लिया गया था। इसलिए पैसे की तंगी नही थी। गाडियाँ बदलते चलते चाँमरगज पहुँचे। सोन नदी के पुल पर पुलिस का पहरा था। उसे बचाने के लिए नहर की पटरी पकडी और सात मील का चक्कर लगा कर सोन नदी पार की।

गाँव की जैसी परिपाटी होती है जहाँ भी ये लोग निकलते लोग सवाल करते कि किस गाँव से आए हैं और कहाँ जा रहे हो ? झूठे जवाब देते देते नाको दम आ गया था। रात हुई तो एक मन्दिर मे ठहरे। सुबह ही जल्दी चले और करवन्दिया स्टेशन पर पहुच गए, जहाँ से मुगलसराय के लिए ट्रेन पकडनी थी। चमरौंधा जूता, घुटने तक धोती, मु डा सिर, धोती का सिर पर साफा, बे-हिसाब मूछें गदा सा कुर्ता और हाथ मे लाठी—यह रूप था तीनो साथियो का। मुगलसराय पर उतरने पर अखबार लेकर पढा तो पता चला कि सरकार ने जयप्रकाश को पकडवाने के लिए 10 हजार रुपये के इनाम की घोषणा कर दी है। इसलिए और भी सतर्कता की जरूरत हो गई। अकेले सालिगरामजी मुगलसराय से सीधे काशी भेज दिए गए। जयप्रकाशजी तथा रामनन्दन रामनगर के लिए रवाना हो गए। खडखडिया इक्के मे बैठकर वे रामनगर पहुँचे। रामनगर से बजरे मे बैठकर विश्वविद्यालय पहुँचे। जेल से भागकर अब जयप्रकाशजी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय म अपने एक मित्र के यहाँ जा छिपे।

एक जगह जमकर रहना खतरे से खाली नही था। साथ ही, भूमिगत साथियो से सम्पर्क करना भी आवश्यक था। उधर जे० पी० का स्वास्थ्य भी अच्छा नही था। 2-2, 3-3 दिन रुकते हुए वे अपना स्थान बदल रहे थे। रामनन्दन बम्बई गए। क्योकि सूचना यह मिली थी कि अच्युत पटवर्धन, अरुणा आसफअली, डा० राममनोहर लोहिया, केसकर, सुचेता कृपलानी आदि वहीं हैं। जे० पी० के पकडवाने का इनाम अब 21 हजार कर दिया गया था। उधर विदेशी सरकार के दमन चक्र से देश मे त्राहि त्राहि मच रही थी।

जी ने आगाखाँ महल में अनशन किया था।

इसके बाद जयप्रकाशजी बम्बई से दक्षिण भारत होते हुए कलकत्ता पहुँचे। रेल की इस यात्रा में जे० पी० को फिर एक अप टू डेट साहब का रूप भरना पड़ा। अच्युत पटवर्धन की बहन विजया उनके साथ थी। कभी वह उनकी बेटी और कभी सेक्रेटरी के रूप में अपना परिचय देती थी। कलकत्ता पहुँच कर बहुत से छोटे छोटे गुप्त अड्डे तैयार किए गए। कलकत्ता में ही जयप्रकाश जी ने यह फैसला किया कि नेपाल एक सुरक्षित स्थान हो सकता है जहाँ पर छापामार युद्ध की तैयारी की जा सके। नेपाल की यात्रा की तैयारी के लिए श्री सूर्य नारायण और श्री श्यामनन्दन मिश्र पहले भेज दिए गए। कटिहार होते हुए एक भद्र बंगाली की पोशाक में ए० बी० सिन्हा का नाम धारण कर जे० पी० नेपाल की ओर चल पड़े। लुकते-छिपते जयप्रकाश जी नेपाल में दाखिल हो गए। यहाँ उन्हें एक छापामार सेना गठित करनी थी, क्योंकि उसके बिना उनके और उनके साथियों की राय में देश को स्वतन्त्र करना सम्भव नहीं था।

आजाद दस्ते का गठन

'आजाद दस्ता' के नाम से जयप्रकाश जी ने वहाँ नौजवान साथियों का एक दल गठित कर उसे छापामार युद्ध की ट्रेनिंग का काम करने की योजना बनायी। दरअसल दूसरे महा युद्धकाल में जर्मनी ने योरोप के जिन देशों पर बलात् कब्जा किया था, वहाँ भूमिगत विद्रोह पनप रहा था। वही जयप्रकाश जी की प्रेरणा का स्रोत था। उधर भारत मे जे० पी० द्वारा गठित गुप्त अड्डों में प्रशिक्षित नौजवान तोड़-फोड़ की कारवाइयों में लग गये।

यद्यपि जे० पी० का विध्वंस की कार्रवाई करने का उत्साह तात्कालिक लाभ के लिए ही था। किन्तु यह काम केवल क्रान्ति को बनाये रखने के लिए ही था। जे० पी० बराबर यह कहते थे कि इससे देश को आजादी मिल जायेगी यह आवश्यक नहीं। उन्होंने अपनी एक पुस्तक में यह लिखा भी है कि यह ध्वंसात्मक कार्य क्रान्ति की मशाल तो जलाए रख सकते हैं पर स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए रचनात्मक

कार्यक्रम अपनाने ही होंगे।

आजाद दस्ते का असली कार्यक्रम समय आने पर शुरू होने वाला था इसलिए तब तक कुछ प्रशिक्षित नवयुवकों को भारत में तोड़-फोड़ का काम करने के लिए भेजा गया जिनके साथ लाखों-करोड़ों लोग छिपे-छिपे सहानुभूति रख रहे थे। नेपाल से आन्दोलन का संचालन हो रहा था। इसलिए सबसे अधिक उसका प्रभाव नेपाल से लगे भारतीय क्षेत्र बिहार और उत्तर प्रदेश में हुआ।

कोसी नदी के कछार में बकरी-टापू नामक एक स्थान है। जयप्रकाशजी ने यहीं अपना सदर मुकाम बनाया। धीरे-धीरे यह स्थान एक छोटा सा नगर सा बन गया था। यहीं पर आवश्यक चीजों की पूरी व्यवस्था करली गई थी ताकि किसी भी समय यह स्थान छोड़ना पड़े तो आने-जाने आदि में कठिनाई न हो और मुख्य काम में बाधा न पड़े। श्री सूरज नारायण की अध्यक्षता में एक आजाद कौन्सिल का निर्माण भी किया गया था। विचार यह था कि धीरे-धीरे भारत के हर जिले में इसके कार्यालय खोले जायेंगे। डा० राम मनोहर लोहिया भी जे० पी० के पास नेपाल पहुँच गये थे।

इधर भारत में ब्रिटिश सरकार को इस बात का पता चल गया था कि जे० पी० नेपाल पहुँच गए हैं। और उधर जे० पी० के शिविर में भी कुछ नये-नये चेहरे दिखाई दे रहे थे। जो गुप्तचरों के अलावा और कोई नही थे। नेपाल में दो महीने ही रह पाये होंगे कि नेपाल सरकार ने अंग्रेज सरकार के दबाव पर श्री जयप्रकाश और श्री लोहिया को गिरफ्तार कर लिया और हनुमान नगर जेल में डाल दिया। इससे आन्दोलन की सारी योजना खटाई में पड़ गई।

आजाद दस्ता कितना सक्रिय था इसका पता इस बात से लगता है कि उसके सैनिकों ने एक रात जेल पर हमला बोलकर जयप्रकाशजी और लोहियाजी को मुक्त करा लिया। नेपाल से मुक्त होकर दोनो नेता अपने साथियों के साथ कलकत्ते की तरफ चल देने को मजबूर हो गए। कलकत्ते की ओर जाते हुए एक बार यह विचार मन मे आया कि नेताजी सुभाषचन्द्र बोस बर्मा मे है, उनसे मिलने के लिए जयप्रकाशजी

छिपे-छिपे रगून पहुँच जाय। किन्तु वर्षा के कारण और जे० पी० के खराब स्वास्थ्य के कारण यह सम्भव न हो सका।

भारत सरकार जयप्रकाश जी को गिरफ्तार करने के लिए बेचैन थी। इनकी खोज तेजी से की जा रही थी। जगह-जगह छापे डाले जा रहे थे। और थोडा भी सन्देह होने पर जे० पी० की शक्ल से मिलने वाले कितने ही लोगो को गिरफ्तार कर लिया गया था। अगर कहीं नाम जय या प्रकाश होता तो उस बेचारे की तो मुसीबत ही आ जाती। उन्ही दिनो जयप्रकाश के मित्रो ने उन्हे यह सुझाव दिया कि वे भारत छोड कर विदेश चले जायें। लेकिन जे० पी० को यह मजूर न हुआ तो वे दिल्ली पहुँचे और छिपने के लिए दिल्ली से रवाना हो गए काश्मीर की तरफ। जिस प्रकार हजारी बाग जेल से भागने और नेपाल पहुँचकर रहने का नाटक सा हुआ था उसी प्रकार से इस शेर को फिर पिंजरे मे ले लिया गया। 9 नवम्बर 1942 को हजारी बाग जेल से भागे थे और 18 सितम्बर, 1943 को उन्हे अमृतसर स्टेशन पर गिरफ्तार कर लिया गया।

हुआ यह कि दिल्ली से रात 10 बजे अग्रेजी पोशाक पहने जय-प्रकाश फर्स्ट-क्लास के डब्बे मे सवार हुए और लाहौर के लिए चल पडे। ट्रेन चलने के कुछ समय बाद ही एक अग्रेज और एक सिख कप्तान ने उन्हे पहचान लिया और जैसे ही ट्रेन अमृतसर पहुँची, उन्हे गिरफ्तार कर लिया गया और अगले दिन 19 सितम्बर को वे लाहौर किले मे बन्द कर दिए गए। लाहौर का किला भारत मे जर्मनो के नाजी कैम्प न० 1 के मानिन्द माना जाता था। इस जेल मे जे० पी० को कितनी नारकीय यन्त्रणायें दी गई यह जब वे स्वय ही बतलायेंगे तब पता चलेगा। किन्तु लोग यह जानते हैं कि इन्हे बर्फ की सिल्लियो पर लिटाया जाता था, सोने नही दिया जाता था, खाने के नाम पर रद्दी से रद्दी खाना इन्होने खाया। और यह सब हो रहा था जाच के नाम पर। सरकार ने तो जे० पी० की गिरफ्तारी तक की बात छिपा रखी थी, पर बाहर प्राय सभी बातें पहुँच रही थी। लोगो को यह डर हो रहा था कि राजद्रोह अथवा षड्यन्त्र, हत्या, लूट पाट, डाके-जनी आदि

जुर्म लगाकर सरकार जे० पी० और लोहिया को समाप्त कर देगी। जिस प्रकार की यातनाओं की बात बाहर आ रही थी, उससे जेल में गांधी जी और जवाहरलाल नेहरु अत्यन्त चिन्तित थे और उन्हें यह आशंका हो रही थी कि अपने को सभ्य कहने वाली अंग्रेजी सरकार कहीं वाकई जयप्रकाश और लोहिया को फाँसी पर न चढ़ादे।

लाहौर किले की यन्त्रणायें

लाहौर किले में जयप्रकाशजी को जो यातनायें दी गईं, उनको लेकर देश में बड़ी सनसनी मची थी। श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी ने हैबियस कारपस की दरखास्त लाहौर हाईकोर्ट में दी और श्री जयप्रकाश ने भी तीन दरखास्तें हाईकोर्ट में पेश की थी। नीचे उनकी आखिरी दरखास्त अवश्य दी जा रही है, जिससे इस सम्बन्ध की पूरी जानकारी हासिल होती है।

माननीय चीफ जस्टिस, हाईकोर्ट, लाहौर।
महामान्यवर,

आपको कुछ खिजलाहट होगी, यह समझते हुए भी मैं फिर आपकी सेवा मे यह अर्जी पेश कर रहा हूँ। जस्टिस मुनीर ने 4-12-44 को मेरी दरखास्त पर जो फैसला दिया है, उसी के सम्बन्ध में मुझे लिखने को मजबूर होना पड़ा है। सबसे पहले मैं आपको और जस्टिस मुनीर को धन्यवाद देता हूँ कि मेरी पहली दरखास्त रद्द किये जाने पर भी फिर से सुनवाई की।

(1) यह मेरा दुर्भाग्य रहा कि दूसरी बार की सुनवाई में भी, यद्यपि इस बार वकील भी मुझे मिले थे, मेरा मुकदमा आपके सामने सही-सही नहीं रखा जा सका, क्योंकि पुलिस के सामने अपने वकील से बातें करना मैंने नामंजूर कर दिया था। मेरा ख्याल है, मैं कुछ भ्रम मे था और मेरे वकील श्री कपूर भी। उन्होंने मुझे बताया था कि जिस समय मैं उनसे अपनी बातें कहूँ उस, समय पुलिस न रहे, कोर्ट मेरी इस अर्जी को नामंजूर भी कर दे, तो भी मुझे एक बार फिरसे उनके सामने अपना मुकदमा रखने का मौका मिलेगा ही। मैंने सोचा था कि मैं इस दूसरे मौके से फायदा उठाऊँगा। मेरी समझ में नहीं आता कि श्री कपूर

के माँगने पर भी यह दूसरा मौका मुझे क्यो नहीं दिया गया। मालूम होता है, जिन शब्दो मे मैंने एफिडेविट की थी, उन्ही के चलते ऐसा हुआ। मुझे ताज्जुब होता है, साधारण आदमियो की भाषा कानूनी तर्जे बयाँ से क्यो नही ज्यादा साफ होती है। खैर, मुझे इस बात का दुख है कि अपने वकील को मैं पूरी सलाह न दे सका, इसलिए मेरा मुकदमा अच्छी तरह कोर्ट के सामने पेश न किया जा सका और न मुझे कुछ फायदा हुआ। लेकिन, यह मैं आपके पास कुछ शिकायत की तरह से नहीं पेश कर रहा हूँ।

यहाँ मैं आपको बता देना चाहता हूँ कि मैंने क्यो पुलिस के सामने अपने वकील से मुलाकात करने से इकार कर दिया। पहली बात यह, कि मेरी ऐसी धारणा थी कि कैदी को यह कानूनी हक है कि वह अपने कानूनी सलाहकार से एकान्त म बातें करे या कम से कम इतनी दूरी पर बातें करे कि कोई सरकारी अफसर न सुन सके। मैं इसी अधिकार का उपयोग करना चाहता था। दो और बातें भी थी—विद्वान् जज ने अपने फैसले मे लिखा है कैदी को जो कुछ भी सलाह मिस्टर कपूर को देनी थी, उसे आखिर कोर्ट के ही सामने तो खुलेआम पेश करना था, फिर पुलिस सुन लेती, तो क्या हो जाता। जिसे कुछ दिनो बाद पुलिस को सुनना ही था, वह बात पुलिस को नही सुनने देने के लिए कैदी के पास कौन-सी सच्ची दलील थी, यह मेरी समझ मे नही आता। 'मेरा कहना है कि यहाँ जज ने सकुचित दृष्टि दिखाई है। मुलाकात के समय दो पुलिस आफिसर हाजिर थे और तीसरा एक शार्ट हैंड जानने वाला था, जो मेरी बगल मे था। इससे साफ है कि जो कुछ मैं या मेरे वकील कहते या जिस बात को पुलिस से दिलचस्पी होती, उसे शब्दश लिख लिया जाता। मुझे कुछ ऐसा लगता था कि मैं अपने वकील से बातें नही कर रहा हूँ पुलिस के सामने अपना बयान दे रहा हूँ। जब कोई मुद्दई या मुद्दालय अपने वकील से बातें करता है, तो वह सिर्फ उन्हीं बातो की चर्चा नही करता, जिन्हे कोर्ट के सामने पेश करना होता है, बल्कि मुकदमे के सभी पहलुओ पर विचार विनिमय करता है। कुछ पहलू कमजोर होते है, कुछ मजबूत। फिर हर पहलू की अच्छी

और बुरी सम्भावनायें होती हैं। उन्हें किस तरह पेश किया जाय, यह भी सवाल उठता है। इसलिए यह जरूरी हो जाता है कि वह अपने वकील से खुल कर बातें कर सके। मैं भी यही चाहता था कि खुल कर मुकदमे के सभी पहलुओं पर राय दूं और लूं। लेकिन जब पुलिस सुन रही हो और शार्टहैन्ड वाला नोट ले रहा हो, तब क्या ऐसा सम्भव था? यह देश के किसी हिस्से मे भी सम्भव होता, किन्तु, खास कर इस प्रान्त में, जहाँ नागरिक आजादी का नाम भी नही है और पंजाब की सी० आई० डी० सर्वशक्तिमान कही जाती है और नागरिकों के लिये भयानक होवा बनी हुई है।

एक तीसरी बात भी मुझे कहनी है। मुझसे सलाह लेने के बाद मेरे वकील को कोर्ट के सामने मेरा मुकदमा रखना था और उसका विरोध सरकारी वकील या एडवोकेट-जेनरल को करना था। अब श्री कपूर जब तक मेरी बातों को कोर्ट के सामने रखें, यदि उसके पहले ही सरकारी वकील को सारी बातें मालूम हो जायें, तो क्या मेरे और मेरे वकील के साथ यह इंसाफ की बात होती? मेरी मुलाकात के समय लिये गये नोट की कापी पुलिस सरकारी वकील को नही दे सके, इसके लिए क्या कोई भी कारवाई सम्भव थी? मुझे अफसोस है कि विद्वान जज ने इन बातों पर ध्यान नही दिया।

(2) दूसरी बात मुझे फैसले में लिखी गई कुछ गलत बातों के सम्बन्ध में कहनी है। मैं नही जानता कि किसने कोर्ट को ये गलत बातें बताईं। अगर मेरे वकील ने बताई हों, तो उस बेचारे का क्या कसूर। क्योंकि उनको सही बात जानने का मौका कहाँ दिया गया। और, अगर सरकार की ओर से ये बातें रखी गई हैं, तो मेरी समझ में नहीं आता कि कोर्ट को गलत जगह ले जाने की जरूरत क्यों अनुभव की गई?

मैंने यह कभी नही छिपाया कि बिहार के हजारीबाग सेन्ट्रल जेल से मैं भाग आया था, लेकिन मैं किसी एक आदमी के साथ नहीं, पाँच आदमियों के साथ भागा था। फिर यह घटना 1943 में नहीं हुई थी, बल्कि नवम्बर, 1942 में। मैं अमृतसर स्टेशन पर गिरफ्तार किया गया था, जब मैं फ्रन्टियर मेल से दिल्ली से रावलपिण्डी जा रहा था

और उसकी तारीख थी 18 सितम्बर 1943 की भोर। किन्तु फैसले में लिखा गया है कि मैं लाहौर मे 19 अगस्त 1943 को, सम्भवत. भारत-रक्षा-कानून की 19 वी धारा के अन्तर्गत गिरफ्तार किया गया और 22 सितम्बर को उसकी दफा बदल कर 26 कर दी गई थी। गिरफ्तारी की तारीख तक मे जब गलती है, तो नजरबन्दी की दफाओ मे भी गलती हो सकती है। मैं ऐसा इसलिए कह रहा हूँ कि उस समय मुझ पर कोई आर्डर तामील नही किया गया था। फिर, मैं कांग्रेस वर्किंग कमेटी का सदस्य नही हूँ और न हजारीबाग से भागने के समय था। 1936 मे, थोडा समय छोड कर मैं कभी वर्किंग कमेटी का मेम्बर नही रहा। मैं इस गलती को इसलिए सुधारना चाहता हूँ की जेल से भागने या उसके बाद के मेरे काम से कांग्रेस का कोई सरोकार नही समझा जाय।

मुझ पर सरकारी आर्डर, एक के बाद एक, तामील होते रहे। पहला आर्डर पजाब गवर्नमेंट के चीफ सेक्रेटरी का था, जिन्होने पुलिस के आई०जी० को हुक्म दिया था कि 1858 के बगाल रेगुलेशन के अनुसार मुझे लाहौर के किले में कैदी की हैसियत से रखा जाय। यह 1943 के नवम्बर महीने के मध्य में हुआ, यानी जैसा कि अब मालूम होता है, श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी द्वारा हाइकोर्ट मे दरखास्त देने के कुछ दिनो के बाद ही। इसके पहले भारत-रक्षा-कानून की 129 या 26 धाराओ के अनुसार जो आर्डर हुए थे, मुझे उनकी खबर भी नही। दूसरा आर्डर, जो मुझ पर तामील किया गया, वह मिस्टर बूर्न का था, जिसमें कहा गया था कि मुझे नजरबंद की तरह से उसी किले मे रखा जाय। यह आर्डर पहली जुलाई 1944 का था, जिसकी चर्चा फैसले मे की गई है। भारत सरकार के होम डिपार्टमेन्ट के सयुक्त मत्री, मिस्टर सहाय, के आर्डर की मुझे कोई खबर नही। कुछ दिन के बाद सेण्ट्रल गवर्मेन्ट ने 23 अगस्त, 1944 को श्री टाटेनहम के दस्तखत से मुझ पर एक आर्डर तामील कराया, जिसमे कहा गया था कि मुझे 1944 के तीसरे आर्डिनेन्स के मुताबिक उस किले मे रखा गया। आखिरी आर्डर 30 नवम्बर को मुझ पर तामील हुआ है कि पहला आर्डर मुझ पर जारी रखा जाय।

यहाँ मैं आपके सामने पहले आर्डर के बारे में एक विचित्र बात का उल्लेख करूंगा। जैसा कि मैंने आपको कहा, यह पहला आर्डर नवम्बर के मध्य में मुझ पर तामील किया गया। तारीख की याद मुझे नहीं रही, लेकिन वह तीसरे सप्ताह के शुरू में जरूर था। कुछ दिनो के बाद, पंजाब गवर्नमेण्ट के द्वारा या केन्द्रीय सरकार के द्वारा यह तय किया गया कि मुझे उस आर्डर के अनुसार स्टेट प्रिजनर की सारी सहूलियतें दी जाएं। पहली फरवरी 1944 को पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट ने आकर सरकार के निर्णय की सूचना मुझे दी। उन्होने मुझे सूचित किया कि अन्य सहूलियतों के अतिरिक्त मुझे 50) पचास रुपये माहवारी मिलेंगे और शुरू के खर्च के लिए 50) इसके अलावा। उन्होने कहा कि मेरी बकिऔता कुल मिलाकर 125) हुआ, जो मेरे हिसाब में दर्ज कर दिया जायगा। उस समय मैंने हिसाब नही किया, लेकिन पीछे हिसाब किया तो मेरे 175) रु० होते थे—पचास रुपये शुरू के, पचीस रुपये आधे नवम्बर के और पचास-पचास रुपये नवम्बर-दिसम्बर के। मैंने जब इस ओर स्थानीय अफसर का ध्यान आकृष्ट किया तो उसने कहा, मेरा हिसाब आधे दिसम्बर से किया गया है। मैंने कहा, आधे नवम्बर से क्यों नहीं? तो उसने मजूर किया कि गलती हो गई है, किन्तु मुझसे आरजू की कि मैं इस सवाल को आगे न बढ़ाऊँ। पचास रुपये से कुछ होना-जाना न था, इसलिए मैं भी चुप्पी लगा गया।

लेकिन अब, जब मैं उस पर विचार करता हूँ, तो मुझे ऐसा लगता है कि यह गलती जान-बूझकर की गई थी, जिससे ऐसा मालूम हो कि लाहौर हाईकोर्ट मे श्रीमती बनर्जी की दरखास्त पढ़ने के लिए स्टेट प्रिजनर बनाया गया। कोई दूसरा कारण भी हो सकता है, क्योंकि बिना किसी कारण के पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट पचास रुपये की तुच्छ रकम क्यों हड़पता।

मैं आपका ध्यान एक बात की ओर और खीचना चाहता हूँ। यहाँ मुझ पर तामील किये गये या बेतामील किये गये आर्डरों की सभी तारीखें कोर्ट के सामने रखी गई हैं, जिनका फैसले मे उल्लेख है, वहाँ बंगाल रेगुलेशन वाले आर्डर की तारीख कहीं नही दी गई है, क्योंकि

फैसले मे कही भी इसकी चर्चा नही है।

मैं कह नही सकता कि जस्टिस मुनीर के फैसले पर इस तथ्य का कोई प्रभाव पड सकता है। यह आपके और विद्वान जज के विचार पर निर्भर करता है और मेरे वकील का काम है कि वह इससे कोई नई दलील शायद आपके सामने पेश कर सके।

(3) अब मैं अपनी दरखास्त के मुख्य हिस्से पर आता हूँ यानी इस बात पर कि मेरी नजरबन्दी कानूनी है कि नही। मैं शुरू मे ही कह दू कि कानूनी बातें आपके सामने रखने का उपयुक्त पात्र मैं अपने को महसूस नही करता। लेकिन मैं इस सम्बन्ध की बातो को आपके सामने सक्षेप मे रख देना चाहता हूँ। सबसे पहले मैं कोर्ट के इस निणय पर सतोष प्रकट करता हूँ कि उसने सरकारी वकील की इस दलील को रद्द कर दिया है कि 1944 के तीसरे आर्डिनेंस के आर्डरो पर हस्तक्षेप करने का कोर्ट को कोई अधिकार नही है।

मेरे वकील ने मेरी सलाह न मिलने पर भी मेरी दरखास्तो मे उल्लेख की गई खबरो के आधार पर मेरा मुकदमा आपके सामने अच्छी तरह रखने की कोशिश की है। उन्होने नजरबदी की आज्ञा का दो कारणो से विरोध किया। पहला यह कि अधिकारियो को ऐसा आर्डर देने का अधिकार नही और दूसरा यह कि उनका उद्देश्य विशुद्ध नही था। पहले कारण को इस धारणा पर अस्वीकार किया गया कि भारत सरकार के ज्वायण्ट सेक्रेटरी को जरूर ही ऐसी आज्ञा देने का अधिकार दिया गया था। यह धारणा सच हो सकती है। लेकिन इसका कोई भी सबूत नही पेश किया गया और दूसरे कारण को इसलिए अस्वीकार किया गया कि मेरी नजरबदी सिर्फ जिस किसी भी तरह से मुझसे कुछ बातें निकालने के लिए ही नही की गई होगी। और, फिर यह कि 10 दिसम्बर, 1943 के बाद कोई पूछताछ मुझसे नही की गई।

इस सम्बन्ध मे मेरा निवेदन सक्षेप मे यह है—मैं खुलेआम यह स्वीकार करता हूँ कि जो कानून हमारे देश पर जबरदस्ती लादा गया है, उसके अनुसार, जेल से भागने के पहले या उसके बाद की मेरी कार्रवाइयो से हो सकता है कि जनता की शान्ति मे बाधा पडी

हो और युद्ध के सफल संचालन में विघ्न हुआ हो। किन्तु मैं समझता हूँ कि मेरी इन कारंवाइयों से मेरे देश को अधिक से अधिक लाभ ही हुआ होगा। यह एक राजनीतिक विचार है और कानून और कोर्ट का इससे कोई ताल्लुक नही होना चाहिए और मैंने इसका उल्लेख यहाँ यों ही चलते-चलाते कर दिया है।

इस विचार से, जिस समय मैं गिरफ्तार किया गया, मेरे मन में इस बारे में जरा भी संदेह नहीं था कि मेरी गिरफ्तारी और नजरबंदी तथाकथित जनता को शान्ति की रक्षा और युद्ध के सफल संचालन के लिए हुई है। मै यह कहकर अपनी रिहाई नही चाहता था और न चाहता हूँ कि मुझ पर यह आरोप गलत लगाए गए थे। तो भी मैं आपको बार-बार असुविधा दे रहा हूँ—दो मर्तबे दरखास्त दे चुका और यही तीसरी बार दे रहा हूँ, क्यों?

इसका कारण वही है, जिसका उल्लेख मैंने पहली दरखास्त में किया था। जिस समय श्रीमती बनर्जी ने हाईकोर्ट में दरखास्त दी थी, उस समय उसकी खबर मुझे नही थी और न मुझे मालूम था कि मुझे स्वयं भी यह कानूनी हक हासिल है कि मैं 491 दफा के अनुसार दरखास्त देकर अपने ऊपर होने वाले असहनीय बर्ताव को रोक सकता हूँ। तो भी मैंने तथाकथित पूछताछ के जमाने में कई बार यह चर्चा की थी कि मैं सरकार को इस सम्बन्ध में लिखना चाहता हूँ, मुझे इसकी इजाजत नही दी गई। अब मै सोचता हूँ कि यदि मैंने हैबियस कारपस की दरखास्त देने का हुक्म माँगा होता, तो उसे भी अस्वीकार कर दिया गया होता। मेरे खयाल से पारडीवाला के मुकदमे के बाद ही इस प्रान्त में यह सम्भव हो सका है कि मुसीबत में पड़ा हुआ राजबंदी हैबियस कारपस की दरखास्त देकर कानूनी रक्षा की माँग कर सके।

जब श्रीमती बनर्जी की दरख़ास्त नामंजूर की जा चुकी, तब मुझे उसकी धुंधली खबर मिली थी। उसका पूर्ण उद्देश्य का पता तो मुझे जस्टिस मुनीर के फ़ैसले से लगा है। किन्तु मुझे यह खबर मालूम हुई थी कि चूँकि मैं बंगाल रेगुलेशन का स्टेट प्रिजनर हूँ इसलिए मुझ पर दफा 491 लागू नहीं हो सकती। किन्तु जब जुलाई मे मुझे फिर बंगाल

रेगुलेशन से हटाकर भारत-रक्षा कानून के अनुसार नजरबंद बनाया गया, तो मुझे यह समझने मे देर न लगी कि मेरी गिरफ्तारी के बारे में हुई कुछ गैरकानूनी कारवाई को ढकने के लिए ही यह चाल चली गई थी। मैंने पहली दरखास्त इसीलिए दी कि मैं कोर्ट की सही बात तक पहुँचने मे मदद कर सकूं। दूसरी दरखास्त मे मैंने साफ लिखा है कि अब तक गैरकानूनी कार्रवाइयो को दुरुस्त कर लिया गया होगा, तो भी कोई पता लगावे कि शुरू मे गैरकानूनी कार्रवाई हुई थी या नही। गैरकानूनी कार्रवाई से मेरा मतलब वही था जिसे मेरे वकील ने सामने रखा था यानी यह आर्डर न तो योग्य अधिकारी द्वारा जारी किया गया था और न कानून के अनुसार मुझ पर तामील किया गया था। यह सवाल अभी हल नही हो पाया है क्योंकि मेरे वकील का ध्यान केन्द्रीय सरकार के 27 जून, 1944 वाले आर्डर पर था।

जस्टिस मुनीर ने अपने फैसले मे लिखा है—' जब यह दरखास्त मेरे सामने 17 दिसम्बर, 1943 को पेश की गई, सरकारी वकील ने बताया चूंकि अभियुक्त बगाल स्टेट प्रिजनर रेगुलेशन के अनुसार नजरबंद किया गया है, इसलिए उस पर ताजीरात हिन्द की 491 दफा लागू नही है और इसी आधार पर यह दरखास्त रद्द कर दी जाय। सरकारी वकील की बात रह गई और 23 दिसम्बर को श्रीमती बनर्जी की दरखास्त डिसमिस की गई।" इन शब्दो से ही मालूम होता है कि बगाल रेगुलेशन की आड इसीलिए ली गई थी कि श्रीमती बनर्जी की दरखास्त पर सुनाई न हो। इस बात से मैं इस नतीजे पर आया हूँ कि मेरी गिरफ्तारी मे जरूर ही गैरकानूनी कार्रवाई की गई थी और मेरे साथ गैरकानूनी व्यवहार किया गया था, जिस तथ्य को हाईकोर्ट मे प्रकट होने से सरकार डर गई थी। इसीलिए बगाल रेगुलेशन का प्रयोग निस्सन्देह ही एक गैरकानूनी कार्रवाई को छिपाने के लिए किया गया था और मैं इस गलती को दुरुस्त कराने के लिए हर सम्भव उपाय काम मे लाना चाहता हूँ। यह गलती एक साल पहले हुई थी, इसलिए आज उसे सही नही मान लिया जा सकता, न कोर्ट को ही मुनासिब है कि उस ओर ध्यान दे न दे।

अब मेरी गिरफ्तारी के सम्बन्ध में बुरी नीयत के प्रश्न पर आइये। मैं कोर्ट के फैसले से सहमत हूँ कि मेरी नजरबंदी सिर्फ मुझसे गुप्त-गुप्त बातें निकालने के लिए ही नहीं हुई थी, लेकिन मेरा यह दृढ़ विचार है कि लाहौर किले में तो मुझे इसी उद्देश्य से रखा गया था। जज ने मेरी गिरफ्तारी और इस पूछताछ के बीच के लम्बे अर्से पर जोर दिया है। मेरा कहना है कि यह अर्सा लम्बा नहीं है, क्योंकि मैं 18 सितम्बर को गिरफ्तार हुआ था, न कि 19 अगस्त को। इसलिए पूछताछ तो एक महीने के बाद ही शुरू हो गई थी और इतनी देर करना जरूरी था, क्योंकि मेरे सम्बन्ध के कागजात केन्द्रीय सरकार के पास से ही नहीं, प्रान्तीय सरकारों के पास से भी मंगाने थे। सच बात तो यह है कि जिस समय पूछताछ शुरू हुई, पंजाब सी० आई० डी० के अतिरिक्त बंगाल और बिहार की सी० आई० डी० भी वहाँ हाजिर थी। फिर, यह पूछताछ 10 दिसम्बर को बंद हो गई, तो इसलिए कि मुझसे कुछ निकालना असम्भव था और उधर पूर्णिमा बनर्जी की हाईकोर्ट की दरख्वास्त ने सरकारी अफसरों को भाडाफोड़ से भयभीत कर दिया। पूछताछ को फिर से जारी क्यों नहीं किया गया, इसका कारण भी यही है कि पुलिस समझ गई कि मुझसे वह कुछ पा नहीं सकती और बंगाल रेगुलेशन का स्टेट प्रिजनर होते ही मुझसे मिलने को आये हुए पंजाब के होम सेक्रेटरी और गैर-सरकारी दर्शक नवाब मुजफ्फर अली खाँ से मैंने इसकी शिकायत कर दी थी और पंजाब सरकार के पास एक दरख्वास्त भी भेजी थी। इसलिए, मेरा यह निवेदन, आपकी सेवा में, फिर से है कि मुझे लाहौर किले में रखने में सरकार की नीयत साफ नहीं थी. वह मुझसे अगस्त-क्रान्ति के सम्बन्ध की खबरें मुझ पर जुल्म करके प्राप्त करना चाहती थी। इस निवेदन के साथ अब मैं चौथे सवाल पर आता हूँ।

(4) इस किले में रखा जाना मुझसे खबरें लेने की बुरी नीयत से हुआ था, यह निवेदन मैं कर चुका हूँ। अब मेरा यह निवेदन है कि इस किले में रखकर मुझे जान-बूझकर और बदले की भावना से अतिरिक्त सजा देने की कोशिश की गई। एक तो इस किले में किसी

को रखना ही, दूसरे जेलो को दृष्टि मे रखते हुए, जान बूझकर अतिरिक्त कड़ी सजा देना है। मैंने सरकार को लिखा कि मुझे किसी जेल मे भेज दीजिए, किन्तु उसने यह कहकर उस दरखास्त को रद्द कर दिया कि कोई जेल मेरे लिए सुरक्षित नही है। यह दलील लगडी है और इसी से उसकी बुरी नीयत साफ प्रकट हो जाती है। मैं जानता हूँ कि सरकार को यह हक है कि वह अपनी सुविधानुसार जेल का चुनाव करे, किन्तु इस हक के प्रयोग की सीमा होनी चाहिए। जिस पर कोई मुकदमा न चला, जो अपराधी सिद्ध न हुआ जिसे शान्ति-रक्षा के नाम पर ही नजरबद रखा गया है उसके आराम और सुविधा का ध्यान तो रखना ही पडेगा। पन्द्रह महीनो तक एक छोटी सी काठरी मे दिन-रात बन्द रखना, शाम सुबह सिर्फ एक घटे के लिए बाहर निकालना—किसी से मिलने-जुलने न देना—ये तकलीफें तो सजायाफ्ता कैदियो को भी विशेष जुर्म पर ही दी जाती हैं। किसी भी तरह ये बातें नजरबद पर लागू नही की जा सकती।

(5) अब मैं अपनी अन्तिम बात पर आता हूँ। मैंने अपनी पिछली दरखास्तो मे चर्चा की है कि 20 अक्तूबर 1942 से 10 दिसम्बर तक मुझे कष्ट और यन्त्रणाये दी गई हैं। ये यन्त्रणाये क्या थी? इस सम्बन्ध मे मैंने पजाब सरकार के होम सेक्रेटरी को जो खत लिखा था, उसस ही उद्धृत कर देना काफी समझता हूँ—

"मैं पिछले 18 सितम्बर को अमृतसर मे गिरफ्तार किया गया और उसी दिन मुझे इस किले मे लाया गया। गिरफ्तारी के करीब एक महीने बाद मुझे आफिस मे ले जाया गया, जहाँ पजाब, बगाल और बिहार के सी० आई० डी० आफीसर हाजिर थे। मुझे सूचित किया गया कि मुझ कुछ सवालो का जवाब और अपनी हाल की कार्रवाइयो पर बयान देना है। मैंने अफसरो से कहा कि हाल की गुप्त कार्रवाइयो को छोडकर आप जो कुछ पूछेंगे, मैं उसका जवाब दूँगा और जहाँ तक बयान देने की बात है, मुझे सिर्फ यही कहना है कि मैं भारत मे स्थापित अंग्रेजी साम्राज्य का शत्रु हूँ (इगलैण्ड या कामनवेल्थ का नहीं), मैं अपने देश को आजाद करने का काम करता रहा हूँ और तब तक

करूंगा, जब तक उद्देश्य में मुझे सफलता मिले या मेरी मौत आ जाय। पूछताछ करने वाले अफसरों ने कहा कि वे मुझे तब तक नहीं छोड़ेंगे जब तक वे उन खबरों को, जिन्हें वह हासिल करना चाहते हैं, न पा लें।"

इस तरह मुझसे यह तथाकथित पूछताछ शुरु की गई। इसके बाद मुझे रोज आफिस बुलाया जाता और भिन्न-भिन्न समयों तक वहाँ बैठाया जाता। शुरु के दिनों में तो कुछ ही घन्टों तक बैठाया जाता, तो भी मैंने उनसे कहा कि इस तरह मुझे जबर्दस्ती बैठाना और उन सवालों को दुहराते जाना, जिनका जवाब मैं देना नहीं चाहता, मेरे प्रति जुल्म और ज्यादती है। उन्होंने जवाब दिया कि आप पंजाब की सी० आई० डी० के हाथों में हैं, जहां तक इस तरह की बात उठाना भी फिजूल है। धीरे-धीरे पूछताछ का समय लम्बा होता गया — आठ बजे भोर से पांच बजे शाम, फिर दस बजे रात और आधी रात तक। मुझे तरह-तरह से धमकाया जाता—कभी मुलायम से, कभी सभ्यतापूर्वक, कभी त्यौरी बदलकर गुस्सा दिलाते हुए। मैंने इसका बहुत विरोध किया और कहा कि मुझे सुपरिण्टेण्डेण्ट से मिलाओ या सरकारके पास लिखने दो। यह बात मुझे विचित्र लगी कि कैदी को उस सरकार के पास लिखने या शिकायत करने का मौका भी नहीं दिया जाय, जिसने उसे कैद किया है मैं आपका ध्यान इस ओर आकृष्ट करता हूँ क्योंकि इस बात के चालू रखने से बहुत-सी बुराइयाँ और बेइन्साफी हो सकती है। मेरे विचार से कैदी को दरखास्त देने का हक तो हर हालत में होना चाहिए। मैंने उस समय शेखी बघारने की नीयत से नहीं, बल्कि पूरी गम्भीरता के साथ उनसे कह दिया कि आप लोग मेरी जान भले ही निकाल लें—किन्तु दबाव डालकर मुझसे बातें नहीं निकाल सकते। अपनी अवरोधी शक्ति का अन्दाजा किसी को नहीं रहता, किन्तु यह मेरा ईमानदार निर्णय था और आफिसरों को मैंने उसकी गम्भीरता, अनुभव कराने की पूरी कोशिश की।

"मुझे जो कष्ट दिए जाते थे, वे यंत्रणा में तब बदल गए, जब मुझे रात या दिन में सोने नहीं दिया जाता था। भोर से बारह बजे

तक मुझे आफिस मे रखा जाता था। तब एक घण्टे के लिए मुझे जेल मे ले जाया जाता था, फिर वहीं से एक या दो घण्टे के लिए आफिस मे ले आते । फिर जेल मे ले जाते—यो इस सिलसिले को रात भर भोर तक जारी रखते। बीच-बीच मे थोडा वक्त जेल मे मिलता, उसमे क्या खाक मैं सो पाता—ज्यो ही झपकी आती कि मुझे जगा देते और आफिस मे ले जाते। कागज पर लिखने मे यह क्रिया उतनी भीषण न मालूम पडे, किन्तु मैं ईमानदारी से आपको विश्वास दिलाता हूँ कि कई दिनो तक लगातार इस क्रिया को दुहराने पर ऐसा मालूम पडता था कि दिमाग फट गया है, नसें चूर हो गई, उफ, कैसी यत्रणा। हाँ यत्रणा छोडकर इसका दूसरा नाम दिया नही जा सकता है।

"दिसम्बर के दूसरे हफ्ते म इस यत्रणा का अन्त हुआ और 'पूछ-ताछ' भी खत्म की गई कुछ दिनो के बाद मुझे खबर दी गई कि अब मुझसे पूछताछ नही की जायगी।"

श्रीमान, ये तथ्य हैं और सरकार को भी इसे अस्वीकार करने या इसकी सच्चाई पर उ गली उठाने की हिम्मत नही हुई है। अपने उस खत से ही मैं कुछ और भाग उद्धृत करना चाहता हूँ, क्योंकि वे इस मौके के लिए भी बेमौजूँ नही हैं—

"मेरी शिकायत यह है कि मुझे जो यत्रणायें दी गई हैं, या मेरे साथ जो ऐसा व्यवहार किया गया है, उसके लिए कोई भी औचित्य नही है। इसके लिए सरकार के पास कोई कानूनी या नैतिक भित्ति नही है। आर्डिनेन्सो मे अधिक से अधिक अख्तियार दिए गए हैं, किन्तु ऐसी कार्यवाहियो के लिए उसमे भी जगह नही है। कैदी बेचारा सबसे निरीह प्राणी होता है, वह जो भी जुर्म करे, सभ्यता उसे बुरे व्यवहार से रक्षा करती है। अपने जुर्म के कारण, कानूनी ढग से, उसे फाँसी दी जा सकती है। कैदी की हैसियत से कैद के कानून तोडने पर, उसे सजायें भी दी जा सकती हैं, किन्तु पुलिस को यदि वह बातें न बताए, तो उसे कष्ट या यत्रणा नहीं दी जा सकती, फिर राजनैतिक कैदी के साथ ऐसा व्यवहार हो, यह तो और भी भयानक बात है। यहाँ मैं सरकार का ध्यान दूसरी बात की ओर आकृष्ट करता हूँ। मैं अभिमान या शेखी नही

दिखाता, लेकिन अपनी बात को महत्व देने के लिए मुझे कहना पड़ता है कि यदि सी० आई० डी० मेरे साथ ऐसा व्यवहार कर सकती है, तो उन लोगों के साथ कहाँ तक वह जाती होगी जो मुझसे भी अधिक देश-भक्त होंगे, किन्तु जो जनता के समक्ष या सार्वजनिक जीवन में मेरे जैसा स्थान या पद नहीं प्राप्त कर पाते। ऐसे लोगों को सी० आई० डी० की मर्जी पर छोड़ देना मुनासिब नहीं, ऐसी स्थिति का अन्त तो होना ही चाहिए।

"राजनीतिक विपत्तियों का दमन और नाश तो नाज़ियों और फ़ासिस्टों का तरीका है और कष्ट एवं यन्त्रणायें उनके शासन के मुख्य चिन्ह। यह तर्क पेश किया जाता है कि जो लोग मेरी तरह हिंसा में विश्वास करते हैं, उनका दमन हिंसात्मक उपाय से करना अनुचित नहीं। मैं इस दलील को मान लेता हूँ, लेकिन उनके दमन के लिए भी कानूनी ढंग को ही बरतना होगा। एक राजनीतिक क्रान्तिकारी को फाँसी भी दे दीजिए, यदि कानून उसे अपराधी समझता है; लेकिन कोई सूचना या खबर उससे लेने के लिए उसे यन्त्रणा नहीं दी जा सकती। राज-नीतिक संघर्षों में युद्ध बहुत ही भयानक, पाशविक और संहारक है। किन्तु युद्ध के बन्दियों के लिए कुछ नियम हैं, जिनका पालन सुसभ्य समाज ईमानदारी से करता है। युद्ध-क्षेत्र में जिसे किरचों से भोंक कर निर्ममता से मार दिया जा सकता है, उसे ही जब कैद कर लिया जाता है, तो उसके साथ दुर्व्यवहार नहीं किया जाता और उससे उसके देश के जीवन के मापदण्ड और सेना में प्राप्त पद के अनुसार बर्ताव किया जाता है।"

मैंने उस समय यह लिखा था और आज भी इन्हें इसलिए दुहरा रहा हूँ, कि श्रीमान् इस पर विचार करें।

इसका एक दूसरा पहलू भी है। पूछताछ के सिलसिले में कहा गया था कि पुलिस को अपना काम करना ही है और ऐसे कामों में मानवी मूल्यों और सभ्य आचार पर जोर नहीं दिया जा सकता। ऐसा कहना किसी भी सभ्य सरकार और उसकी पुलिस के लिए लज्जास्पद है। मान लीजिए, पुलिस मानवीय मूल्य और सभ्य आचार पर ध्यान न दे

तो उसे कानून पर तो ध्यान देना ही है। मेरा दावा है कि मेरे साथ जो व्यवहार हुआ, वह कानून-सगत नही था।

समाप्त करने के पहले श्रीमान् से एक बात और कहना चाहता हूँ कि भारत रक्षा-कानून और आर्डिनेन्सो ने इस नारकीय किले को पुलिस के लिये स्वर्ग बना रखा है। इस किले म किसी कैदी को लाकर पुलिस उसे बाहर के ससार से बिल्कुल पृथक कर देती है उसे किसी कचहरी या मजिस्ट्रेट के पास पेश नही करती और जब तक चाहे, सडाती रहती है। ऐसे तीन उदाहरण मेरे सामने हैं—इन्द्रप्रकाश आनन्द, जयचन्द्र विद्यालकार और डाक्टर राममनोहर लोहिया के साथ भी मेरे ही ऐसा या उससे भी बदतर व्यवहार किया गया है। मेरा ख्याल है, ऐसे सैकडो मामले होगे। मुझे ताज्जुब होगा, इस प्रान्त का सवश्रेष्ठ न्यायाधीश होने की हैसियत से यदि श्रीमान् पुलिस के जुल्मो के शिकार ऐसे निरीह बन्दियो की रक्षा करने का भार अपने ऊपर नही लेवें।

अब मैं अपने कथन का साराश दे रहा हूँ—

(क) फैसले मे जो कई तथ्य बताए गए हैं, वे गलत हैं और मैंने जो तथ्य पेश किये, उनका फैसले पर प्रभाव पडना चाहिये।

(ख) मैं जो कुछ दिनो के लिये जल्द-जल्द स्टेट-प्रिजनर बना दिया गया था, वह या तो इसलिए कि मेरी नजरबन्दी मे की गई गैर-कानूनी कार्रवाई को ढक दिया जाय या मेरे साथ जो दुर्व्यवहार हुआ है, उसकी ओर हाईकोर्ट का ध्यान नही जाने पावे।

(ग) लाहौर किले म मुझे रखना बुरी नीयत का नतीजा था और है।

(घ) मेरे साथ 20 अक्टूबर से 10 दिसम्बर, 1943 तक गैर-कानूनी व्यवहार किया गया, यानी, मुझे कष्ट और यन्त्रणायें दी गईं।

इसलिये मेरा निवेदन है कि 491 दफा के अनुसार या किसी दूसरी दफा के अनुसार मुझे यह अधिकार दिया जाए कि मैं अपने वकील की मारफत इस बात को कोर्ट के सामने पेश करूँ और इस सम्बन्ध मे फैसला पाऊँ। अन्तिम बात के सम्बन्ध में आपसे यह प्रार्थना है कि आप उन लोगो के खिलाफ मामला चलावें, जो गैरकानूनी व्यवहार करने के

मुजरिम हैं और मुझे आज्ञा दी जाय कि मैं सरकार पर मुकदमा चलाऊँ जिसके नौकरों ने मेरे साथ ऐसे बुरे सलूक किये हैं।

इस सम्बन्ध में अपने वकील श्री जीवनलाल कपूर से सलाह ले सकूँ और उन्हें अपनी बातें बतला सकूँ— इसके लिए श्रीमान से निवेदन है कि उन्हें मुझसे मिलने की आज्ञा उन शर्तों के साथ दी जाय, जिन्हें आप उचित समझें। यह भी निवेदन है कि इसकी एक कापी उनको दे दी जाय, जिसमें वह इस बारे में योग्य कार्रवाई कर सकें।

इतना समय लेने के लिए क्षमा चाहता हुआ,

श्रीमान् का अत्यन्त विश्वस्त जयप्रकाश नारायण

शेर पिंजरे से बाहर

बम्बई के एक मशहूर बैरिस्टर ने जब जयप्रकाश की गिरफ्तारी को चुनौती दी तो उन्हें पंजाब पुलिस ने दूसरे झूठे आरोप लगाकर गिरफ्तार कर लिया। इस प्रकार अदालती चाराजोही करने की किसी को हिम्मत होना बड़ा मुश्किल था। किन्तु पूर्णिमा बनर्जी लाहौर पहुँची। उस समय के सुप्रसिद्ध वकील श्री जीवनलाल कपूर द्वारा न्यायालय में प्रार्थना-पत्र दिया गया। जे० पी० के पक्ष में पैरवी के लिए भारत के बड़े-बड़े वकील तैयार होने लगे। ब्रिटेन के मजदूर दल की तरफ से भी एक बड़ा वकील भेजने का संदेश मिला। इस सब के परिणामस्वरूप सरकार ने बनावटी आधारों पर मुकदमा चलाने की बात टाल दी। पंजाब में जयप्रकाशजी और लोहिया जी पर जेल में अत्याचारों को लेकर जो गरम वातावरण पैदा होता जा रहा था और जगह-जगह सरकार के विरुद्ध माहौल बन रहा था, उसे शान्त करने के ख्याल से इन दोनों को आगरा जेल में स्थानान्तरित कर दिया गया। यहीं आगरा जेल में ही उनसे मिलने के लिए ब्रिटिश डेलीगेशन श्री सोरेनसेन पहुँचे। और उस समय यह अफवाह फैली कि शायद दोनों नेता छोड़ दिये जायेंगे पर ऐसा हुआ नहीं। फिर 1945 में गांधीजी की रिहाई के बाद ब्रिटिश केबिनेट मिशन भारत आया। गांधीजी से बातचीत शुरू हुई।

गांधीजी जे० पी० और लोहिया की सुरक्षा के लिए चिन्तित थे।

डर यह था कि कही सरकार इन दोनो बहादुरो की हत्या ही न करा दे। इसलिए गाधीजी ने कैबिनेट-मिशन के सामने यह शर्त रखी कि अगर अग्रेज सरकार वास्तव मे ईमानदारी के साथ सामान्य वातावरण मे बातचीत चलाना चाहती है तो उसे पहले जयप्रकाश और लोहिया को रिहा कर देना चाहिए। दूसरे महायुद्ध मे अग्रेज पिट रहे थे। वह भारत स किसी प्रकार समझौता कर लेना चाहते थे। तब तत्कालीन भारत सरकार के गृह सचिव श्री जयप्रकाश से मिलने आगरा चले गये और बातें आगे बढने लगी। 11 अप्रैल, 1946 को यह समाचार सारे देश मे बडी प्रसन्नता के साथ सुना गया कि आगरा जेल से श्री जयप्रकाश और श्री राममनोहर लोहिया रिहा कर दिये गये। ये वे दिन थे जब भारतीय स्वतन्त्रता के सम्बन्ध मे बातचीत चलने लगी थी। 12 अप्रैल को जयप्रकाशजी दिल्ली पहुँचे और गांधीजी से मिले। अगले ही दिन वे कैबिनेट मिशन के सदस्यो से मिलने गए। अग्रेज यह समझ गए थे कि युवाशक्ति के नायक जयप्रकाश नारायण ही हैं।

दिल्ली से जयप्रकाश जी ने सीधे पटना जाना चाहा पर 1942 की क्रान्ति के जननायक को रास्ते मे ऐसा अभूतपूर्व स्वागत मिला कि उन्हें रुक-रुककर चलना पडा। बनारस मे उन्हे मित्रो न उतार लिया। 2-3 दिन बनारस मे पुराने साथियो के साथ लग गये। तब कही पटना पहुँचे।

जे० पी० का बचपन का नाम बउलजी था। उस दिन अपने बउलजी के स्वागत मे समस्त बिहार ने आँखें बिछा दी। पटना के गाधी मैदान मे एक जनसभा हुई जिसमे लाखो लोग उपस्थित थे। सभाध्यक्ष बिहार केसरी बाबू श्री कृष्णसिंह ने जयप्रकाशजी का यहाँ अभूतपूर्व अभिनन्दन किया। इस सभा मे राष्ट्रकवि स्वर्गीय श्री रामधारी सिंह दिनकर ने अपनी ओजस्वी वाणी से इस अवसर के लिए ही लिखी गयी अपनी कविता का पाठ किया—

"सेनानी! करो प्रयाण अभय
भावी इतिहास तुम्हारा है।
ये नखत अमा के बुझते हैं

न बात के लिए भी प्रयत्नशील थे कि उसका विघटन न हो। एकता ोर शक्ति बनी रहे। कांग्रेस पूर्णरूपेण सरकार बनाने की ओर उन्मुख हो गई थी।

देश की आजादी के लिए देश का विभाजन और विभाजन के बाद साम्प्रदायिक तनाव इतने बढ गए कि लाखो लोग पाकिस्तान से भारत और भारत से पाकिस्तान गए। हजारो रास्ते मे काट डाले गए। खून की नदियाँ बह गई। कांग्रेस सघर्ष का मार्ग छोड चुकी थी और वह शासन सम्भालने की राजनीति मे जा चुकी थी। जे० पी० ने कांग्रेस कार्यसमिति से त्याग-पत्र दे दिया और गाधीजी के पास परामर्श के लिए पहुँचे। देश मे लगी आग को बुझाने के लिए वृद्ध गाँधी दिल्ली से दूर कभी नोआखाली, कभी दिल्ली और कभी बिहार बेचैन भागे फिर रहे थे। और उन दिनो कांग्रेस देश का शासन सम्भालने मे व्यस्त थी। समाजवादी दल के लोग नये रास्ते की खोज कर रहे थे। 1947 के प्रारम्भ मे दल का ऐतिहासिक सम्मेलन डा० राममनोहर लोहिया की अध्यक्षता मे कानपुर मे हुआ। इस सम्मेलन मे समाजवादियो ने पार्टी के नाम से कांग्रेस शब्द हटा लिया और अपने दल का नाम रखा समाजवादी दल। जिस समय माउण्टबेटन योजना पर विचार विनिमय हो रहा था, गाधीजी ने जे० पी० को बुलाया और कहा—' जयप्रकाश तुम अगस्त क्रान्ति के वीर सिपाही हो, तुम्हारी इस वीरता का फायदा कांग्रेस को मिले, एसा मै चाहता हूँ।" जे० पी० ने कहा—' बापू आप आज्ञा दीजिए, मैं क्या करूँ ?" गाधीजी ने उनकी ओर देखा और कहा—"तो तुम कांग्रेस अध्यक्ष बनो।" ज० पी० सकोच मे पड गए। पर बापू को जवाब तो देना ही था कहा—' आपका आदेश है तो मैं तैयार हो जाऊगा पर पहले नेहरू-पटेल से पूछ लेना ज्यादा मुनासिब होगा।"

पडित जवाहरलाल नेहरू से जब गाधीजी ने जे० पी० को कांग्रेस अध्यक्ष बनाने के सम्बन्ध मे कहा तो नेहरूजी के उत्तर से यह पता चला कि वे जे० पी० को अध्यक्ष बनाना नही चाहते। नेहरूजी ने कहा कि बापू यह तो ठीक है किन्तु अभी जयप्रकाश से भी वरिष्ठ लोग

मौजूद हैं। आचार्य नरेन्द्रदेव जैसे सीनियर के बारे में आपको सोचना चाहिए।

गांधीजी ये देख रहे थे कि कांग्रेस के उनके अनुयायियों का ध्यान पूर्णरूपेण सरकार की ओर है और उनका पूरा ध्यान शासन चलाने पर लगा है। तब वे सर्वश्री आचार्य नरेन्द्रदेव, जयप्रकाश, राममनोहर लोहिया, अच्युत पटवर्धन को जनता में कार्य करने के लिए आगे बढ़ाना चाहते थे। पर उसके लिए कांग्रेस के वरिष्ठ नेताओं से विमुख होना पड़ता। और ऐसा करने से हो सकता था कि देश में जिस एकता की अपेक्षा थी वह न रह पाती। और शासन के साथ जनता का तादात्म्य स्थापित न हो सकता। इसलिए गांधीजी खामोश रह गए।

दिल्ली में राष्ट्रीय सरकार बन गई। नेहरू प्रधानमन्त्री बने और सरदार पटेल उपप्रधानमन्त्री। भारत स्वतन्त्र हो गया। लेकिन उसके टुकड़े हो गए। गांधीजी ने इसे जबान से तो स्वीकार किया पर दिल से नहीं। आज़ादी के फौरन बाद साम्प्रदायिक तनाव बढ़ते जा रहे थे और दंगे हो रहे थे। इस प्रकार की मार-काट और साम्प्रदायिकता कभी नहीं हुई थी। कलकत्ते में दंगे हुए। गांधीजी ने उपवास किया तब जाकर शान्त हुए। दिल्ली में 84 घण्टे का कर्फ्यू लगाकर दंगे शान्त किए गए। जे० पी० इस सबसे क्षुब्ध थे। बिहार जब साम्प्रदायिक दंगों की आग में झुलस रहा था तो जे० पी० वहाँ शान्ति के लिए पहुँचे। और आखिर इस साम्प्रदायिकता की आग में 30 जनवरी, 1948 को गांधीजी शहीद हो गए। दिल्ली मानो सकते में आ गया। उस समय जयप्रकाशजी ने कहा था—"पाकिस्तान बनने का विरोध न करके गांधीजी ने भूल की और गलती से मैं गांधीजी की बात मान कर चुप रह गया।"

गांधीजी की हत्या के बाद जब ऐसी कोई शक्ति न थी जो जनता का प्रतिनिधित्व करने के लिए सर्वांशतः तैयार हो जाय, जीवन की बाजी लगा दे। ये वे दिन थे जब जयप्रकाशजी विचलित वेदना भरे दिल से विचार-मंथन में लगे थे। और मार्च 1948 में कांग्रेस ने घोषित किया कि अन्य किसी राजनीतिक दल का सदस्य कांग्रेस का सदस्य न

हो सकेगा। इसका अर्थ यह था कि समाजवादी पार्टी के लिए कांग्रेस मे कोई स्थान न था।

स्वराज्य के बाद

गांधीजी की हत्या पर दिल्ली म आयोजित शोकसभा मे जयप्रकाश ने कहा कि बापू की हत्या कोई साधारण घटना नही है। गृह मत्री को त्यागपत्र दे देना चाहिए।

नासिक मे 19 20 मार्च को पुरुषोत्तम त्रिकम दास की अध्यक्षता मे कांग्रेस समाजवादी पार्टी के अधिवेशन म कांग्रेस को छोड देने का निश्चय किया गया। आचार्य नरेन्द्र देव ने इस अवसर पर कि इस नये कदम से हम जनतात्रिक समाजवाद लाने और समाज के विकास में सफल होगे। प्रजातत्र की जडें जनता मे है जनता के शक्तिशाली होने से राज्य सबल होगा, समाज शक्ति-सम्पन्न होगा। अब नये दल के प्रधानमत्री जयप्रकाश नारायण थे। उनके अतिरिक्त चार सयुक्त मत्री भी बनाये गये थे। दल के प्रधानमत्री का निश्चय दल को अखिल भारतीय बनाने का था ताकि मजदूर और किसानो का शक्तिशाली सगठन तैयार हो सके। सोशलिस्ट पार्टी ने मजदूरो और किसानो के बीच जमकर कार्य किया। जयप्रकाश पाँच बडी यूनियनो क अध्यक्ष थे। किसान सगठन का गठन किया गया। 25 नवम्बर, 194० को पटना मे बिहार के किसानो ने विशाल प्रदशन किया, जिसकी सफलता का श्रेय जयप्रकाशजी को था। किसानो का दो मील लम्बा जलूस निकाला गया। किसानो की सभा की अध्यक्षता मजदूर नेता अबुल हयात चाँद ने की। सोशलिस्ट पार्टी की इससे साख और मजबूत हो गई।

दिल्ली मे सविधान परिषद की बैठक हो रही थी। परिषद के अध्यक्ष डा० राजेन्द्रप्रसाद थे। 30 मई, 1948 को जयप्रकाश ने डा० राजेन्द्रप्रसाद को पत्र लिखा कि वयस्क मताधिकार के आधार पर सविधान परिषद निर्वाचित की जाय और इस परिषद को भग कर देना चाहिए। लेकिन राजेन्द्रबाबू नयी परिषद बनाने के विचार से सहमत नही हो सके। 26 जनवरी 1950 को नया सविधान देश म लागू हो गया। भारत स्वतत्र प्रभुसत्ता सम्पन्न, गणतत्र घोपित किया गया और

डा० राजेन्द्रप्रसाद देश में प्रथम राष्ट्रपति पद पर आसीन हुए।

30 जनवरी, 1950 को गांधीजी की दूसरी पुण्य तिथि पर जयप्रकाश और प्रभावती ने उपवास रखा और चर्खा चलाया। मद्रास में जून 1950 में सोशलिस्ट पार्टी का द्वितीय वार्षिक सम्मेलन हुआ। अध्यक्षता श्री अशोक मेहता ने की। जयप्रकाशजी की यह कह कर आलोचना की गयी कि वे मार्क्सवाद और गांधीवाद का समन्वय करना चाहते हैं। कुछ लोगों ने जनतांत्रिक समाजवाद की भी आलोचना की। दल में जयप्रकाशजी के विरुद्ध वातावरण था।

भूदान यज्ञ के होता

18 अप्रैल 1951 को आन्ध्र प्रदेश मे तेलंगाना के नालगुंडा जिले के पोचमपल्ली गाँव में विनोबाजी को भूदान मिला। तेलंगाना आंदोलन के बाद आचार्य विनोबा भावे ने भूदान आंदोलन का सूत्रपात किया। भूमिहीन मजदूरों को भूमि दिलाने के लिए उन्होंने भूदान का विकल्प प्रस्तुत किया। विनोबा जी ने देश भर का दौरा किया। लोगों ने एक लाख एकड़ से अधिक भूमि विनोबा को दी। उत्तर प्रदेश के बाँदा जिले मे विनोबा ठहरे हुए थे। वहाँ जून 1952 में जयप्रकाश नारायण ने उनसे भेंट की। इससे पहले वह पवनार आश्रम में विनोबा से मिल चुके थे। इस भेंट के दौरान जे०पी० ने उनसे अहिंसा के प्रश्न पर विचार-विमर्श किया।

जे०पी० डाकतार यूनियन के अध्यक्ष थे। कर्मचारियों ने हड़ताल की। जे०पी० ने यह कह कर हड़ताल खत्म करायी कि सरकार हड़ताल के दिनों का वेतन देगी, लेकिन बाद में डाक तार मंत्री रफी अहमद किदवई और प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने कहा कि सरकार ने ऐसा कोई आश्वासन नहीं दिया था। सरकार के इस रवैये से जे०पी० को बहुत दुख पहुँचा। 22 जून से पूना में उन्होंने 21 दिन तक अनशन किया। उनका वजन 17 पौंड कम हो गया। यह अनशन पूना के डाक्टर दीनशा मेहता के प्रकृति चिकित्सा-केन्द्र में हुआ। प्रभावती और महावीर प्रसाद सिन्हा जे०पी० के साथ थे। उन्हें पूर्ण स्वस्थ होने में पाँच महीने लगे। नवम्बर 1952 में वह पूना से पटना चले गये।

बारह दिसम्बर को उन्होंने पडोल गाँव मे एक सार्वजनिक सभा में भाषण दिया। पडोल मे भूमि पुनर्वितरण के लिए सत्याग्रह किया गया था। सागर पुर, ब्रहनोजा, नकोडा, मडौल और सोहराय आदि गाँवो मे उन्होंने सत्याग्रहियो से भेंट की।

विनोबा के भूदान आदोलन के बारे मे लोहिया और जे०पी० की राय अच्छी नही थी। वे भूदान को उचित नही मानते थे। लोहिया की मान्यता थी विनोबा सरकारी पक्ष के सत है इसलिए वे दिल से परिवर्तन के पक्ष मे नही हो सकते। जे०पी० की राय थी कि गाँव-गाँव पैदल घूमने और लोगो से भूमि माँगने से भूमि की समस्या हल नही हो सकती। पर बाद मे जे०पी० को अपनी राय बदलनी पडी और पूना उपवास के बाद वे भूदान आदोलन मे लग गये। फरवरी 1953 मे नेहरूजी ने उन्हे बुलाया कि वे सरकार को सहयोग दें, जिसके लिए जे०पी० राजी नही हुए। रगून मे एशियायी समाजवादी सम्मेलन था वहाँ से लौटने के बाद वह दिल्ली मे नेहरूजी से मिले।

बिहार के गया जिले से उन्होंने भूदान आदोलन शुरू किया। जब किसान जे०पी० की झोली मे दान पत्र डालने लगे तो वह स्तब्ध दग रह गये। एक किसान ने कहा, "मेरी छह बीघा जमीन है, सब ले लो" जे०पी० ने कहा, "सब दे दोगे तो तुम क्या करोगे, विनोबाजी छठा हिस्सा माँगते है एक बीघा दे दो।" पर वह किसान नही माना उसने सारी भूमि दे दी। जयप्रकाश उस किसान के विशाल हृदय और त्याग के सामने हतप्रभ रह गये। किसानो मे भूमि दान करने की होड लग गयी। भूदान आदोलन दिन-पर-दिन बढने लगा। चाँडिल में सर्वोदय सम्मेलन मे विनोबा और जे०पी० ने भाषण किये। जे०पी० ने छात्रो से अनुरोध किया कि वे स्कूल कालेज छोडकर इस नयी आर्थिक क्रान्ति को आगे बढायें तो इलाहाबाद नागपुर और कलकत्ता विश्वविद्यालय के छात्र जे०पी० के नेतृत्व मे, एकत्र हो गये। छात्रो ने इस कार्य के लिए सकल्प लिया। भूदान आदोलन को जे०पी० ने समाजवाद का अग माना।

1954 मे 18 से 20 अप्रैल तक बोध गया मे सर्वोदय सम्मेलन

हुआ। जिसमें जे०पी० के अतिरिक्त आचार्य कृपलानी, राधाकृष्णन्, काका साहब कोलेलकर, जानकी देवी बजाज, पी०सी० घोष, दादा धर्माधिकारी और श्रीमन्नारायण आदि ने भी भाग लिया। 19-अप्रैल को जे०पी० ने घोषणा की कि भूदान के लिए मैंने अपना जीवन अर्पित कर देने का निश्चय किया है। नवयुवक इस कार्य में आगे आएँ। भूदान से भूमि समस्या के साथ सामाजिक और व्यक्तिगत समस्याओं को भी हल करने मे सहायता मिलेगी। बिहार के लिए 32 लाख एकड़ भूमि भूदान मे प्राप्त करने का लक्ष्य था जो पूरा नही हो सका। बिहार प्रदेश कांग्रेस समिति और प्रजा समाजवादी दल ने इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अपने कार्यकर्ताओं को लगाया। लेकिन लक्ष्य पूरा नही हो सका।

भूदान-ग्रामदान-आन्दोलन

भूदान आन्दोलन के सम्बन्ध में जयप्रकाशजी के ये विचार हैं:—

भूदान-आन्दोलन शुरू हुआ, तब पहले तो लोगों की तरह मुझे भी यह एक मजाक जैसा लगा। इससे भूमि-समस्या कैसे सुलझेगी? इस तरह दान मांगते फिरेंगे, तब तो सैकड़ों वर्ष लग जायेंगे। किन्तु मैं बारीकी से देखता रहा विनोबा जी से भी मिला। उनके साथ चर्चाएँ कीं। इसके पीछे उनकी मूल कल्पना क्या है, वह सब समझ लिया। और मुझे उसके प्रति आकर्षण हुआ। मुझे महसूस हुआ कि स्वयं अनुभव करना चाहिए। इसलिए मैं गया जिले मे घूमा। सात दिनों मे साढ़े सात हजार एकड़ भूमि मुझे भूदान में मिली। मेरी समझ मे आ गया और मैं इस आन्दोलन मे कूद पड़ा।

भूदान-यज्ञ काफी बड़ी आलोचनाओ का शिकार रहा है। बहुतों ने इसके माथे असफलता का टीका लगाया, बहुतों ने उसका मखौल उड़ाया। मुझे इन पर कुछ नही कहना है। लेकिन मैं यह जरूर चाहता हूँ कि भूदान-आन्दोलन की करामात उसकी सारी भूलों और असफलताओं के बावजूद निःसन्देह उल्लेखनीय है। सामाजिक जीवन के दायरे मे उसने अहिंसा के सक्षम तरीके को प्रकट किया है। यह ठीक है कि न तो इसके द्वारा देश की भूमि-समस्या जैसा बड़ा प्रश्न हल हो पाया है और

न उसकी तुलना मे भूमिहीनो का छोटा मसला हल हुआ है। भूदान ने भूमिहीनो के लिए जो कुछ भी किया है, वैसा और कोई नही कर सका है। आन्दोलन ने भूमिहीनो के लिए दूसरो की अपेक्षा कुछ अधिक ही किया है।

जमीन के पुनर्वितरण का काम कितना महत्वपूर्ण है, इसका बोध दूसरो को है या नही, मैं नही जानता, किन्तु मेरे लिए तो इसका बहुत महत्व था और आज भी है। आर्थिक सामाजिक क्रांति के सम्बन्ध मे अगर कोई भी सोचेगा उसका ध्यान जमीन के प्रश्न की तरफ जरूर जायगा।

और, परिणाम के सम्बन्ध मे ठोस वास्तविकता क्या है, उसकी खोज किसी ने की है? भारत जैसे देश मे, जहाँ भूमि की समस्या विकट है और प्रति मनुष्य जमीन का प्रमाण अत्यन्त अल्प है, वहाँ भी लगभग 42 लाख एकड भूमि स्वैच्छिक दान द्वारा प्राप्त हुई है और उसमे से 12 लाख एकड भूमि का देशभर मे फैले 4 लाख 60 हजार भूमिहीन परिवारो मे वितरण भी हुआ है।

इसका तो यही अर्थ हुआ न कि जमीन बाँटने के मामले मे जितना भूदान सफल हुआ, उतना कानून सफल नही हुआ। नेहरूजी जैसे प्रधान मंत्री थे। उन्होने हदबन्दी के कानून के सम्बन्ध मे राज्यो के मुख्यमन्त्रियो को कितने कितने पत्र लिखे, योजना-आयोग की तरफ से कितने परिपत्र गये। समाजवादियो और साम्यवादियो के कितने आन्दोलन चलते रहे। उनके भी दबाव पडते रहे। फिर भी स्वराज्य के 25 वर्षों मे भूमिहीनो को कानून द्वारा जितनी जमीन बाँटी गयी, उसकी अपेक्षा कही अधिक जमीन भूदान द्वारा बाँटी गयी है।

क्या आपने कभी पूछा है कि हदबन्दी के कानून से भूमिहीनो को कितनी जमीन मिली है? मैं सरकारी परती जमीन के बँटवारे की बात नही करता, किन्तु हदबन्दी के कानून के अन्तर्गत भूमि मालिको से लेकर भूमिहीनो को कितनी जमीन दी गई, इसकी बात करता हूँ। इस तरह देखेंगे तो गुजरात म कानून द्वारा मात्र आठ हजार एकड जमीन मिली है और उसमे से छ हजार के लगभग बाँटी गयी है, जबकि भूदान

द्वारा गुजरात में 50 हजार एकड़ के लगभग जमीन बाँटी जा चुकी है। महाराष्ट्र में हदबन्दी कानून के अन्तर्गत लगभग सवा लाख एकड़ जमीन प्राप्त घोषित हुई है, किन्तु उसमें से मात्र 25 हजार एकड़ जमीन ही बाँटी जा सकी है, जबकि वहाँ भूदान द्वारा एक लाख छः हजार एकड भूमि बाँटी जा चुकी है। बिहार में हदबन्दी के कानून के अन्तर्गत एक एकड़ जमीन भी नहीं बाँटी गयी है, जबकि भूदान द्वारा वहाँ तीन लाख साठ हजार एकड़ भूमि भूमिहीनों को मिली है। लोग कहते हैं कि विनोबा को तो भूदान मे मात्र रेतीली, पथरीली, और बंजर जमीन ही मिली है, किन्तु किसी ने यह आँकड़े देखने का और उसकी तुलना करने का भी कष्ट किया है ? जो जमीन बाँटी जाती है, वह खेती के योग्य होने पर ही बाँटी जाती है।

दूसरी तरफ हिंसा के रास्ते कितनी जमीन बाँटी गयी, यह भी देखिये। तेलगाना में इतना सब हुआ, फिर भी एक एकड़ जमीन तक किसी को नहीं मिली। नक्सलवाड़ी मे इतनी खून-खराबी हुई, फिर भी किसी के हाथ मे जमीन नही आयी। इस तरह जमीन के बँटवारे में कानून और हिंसा की अपेक्षा करुणा का मार्ग अधिक सफल हुआ है। भूदान-आन्दोलन के द्वारा देश मे बारह लाख एकड भूमि भूमिहीनों में बाँटी है। और यह सब हृदयपूर्वक तथा स्वेच्छा से हुआ। इससे नैतिक ताकत पैदा होती है। देश मे चारो ओर तोड़ने वाली ताकतें काम कर रही है, तब यह एक जोड़ने वाली ताकत बनती है।

भूदान इस आन्दोलन का पहला चरण है। ऊपर-ऊपर से देखने वालों को तो यह महज भूमि बाटने का ही एक आन्दोलन लगेगा। लेकिन यह आन्दोलन केवल भूमिहीनों को भूमि बाँटने का आन्दोलन नही है। यह मानव को ऊपर उठाने का एक प्रयोग है। यह इस बात को समझाने का एक प्रयोग है कि आपके पास कुछ है तो उसमे अपने भाई को भी हिस्सेदार बनाइये, जिसके पास कुछ भी नही है। यानी भूदान एक समग्र अहिंसक क्रान्ति का प्रथम चरण था। प्यारेलाल जी के शब्दों में वह अहिंसक क्रान्ति के लिए व्यूहभेद करने वाला एक अग्रचरण है। भूदान ने हमारे देश में मौजूद सामन्तवादी और पूँजीवादी समाज रचना के

मर्म पर चोट की है।

दूसरा चरण है, ग्रामदान। वह समाज परिवर्तन का एक ठोस कार्यक्रम समाज के सामने रखता है। वह गाव मे सामूहिकता और परस्पर सहयोग की भावना जगाकर ग्राम-स्वराज्य की स्थापना के लिए नीव डालता है। ग्रामदान का पहला स्वरूप बहुत क्रान्तिकारी था। उसका स्वरूप था—भूमि का स्वामित्व छोडने के साथ साथ गाँव की सारी जमीन का लगभग समानता से पुर्नवितरण। ऐसे भी चार-पाँच हजार ग्रामदान हुए। किन्तु व्यापकता के बिना क्रान्ति नही होती। क्रांतिकारी बनने के लिए समाज म कोई भी आदर्श व्यापक रूपसे मान्य होना चाहिए। इसलिए विनोबा जी ने ग्रामदान का नया स्वरूप प्रस्तुत किया।

जब तक गाँव मे कोई मानसिक परिवर्तन नही होगा सामाजिक परिवर्तन नही होगा, पारस्परिक सम्बन्धो म कोई फर्क नही पडगा तब तक कोई उन्नति नही होगी। इसलिए ग्रामदान म मुख्य रूप से इन परिवर्तनो पर जोर दिया जाता है। सबसे पहले तो हम ग्रामदान द्वारा लोगो के मानस मे एसा परिवतन लाना चाहते है कि भूमि का मालिक भगवान है इसलिए भूमि का व्यक्तिगत स्वामित्व नही रहना चाहिए। भूमि का पूरा स्वामित्व ग्राम सभा को समर्पित करना है। फिर भी भूमि पर खेती करने, उत्पादन का उपभोग करने और विरासत म देने का हक भूमिवान के पास ही रहेगा। जमीन ग्रामसभा के नाम हो जाती है और सरकारी खाते म पूरे गाँव का एक खाता हो जाता है तो इससे लोगो के मानस म परिवतन होता है और साथ-साथ सरकार के राजस्व विभाग का काम भी बहुत सरल हो जाता है।

दूसरी बात यह है कि भूमिवान् को अपनी जमीन का बीसवाँ हिस्सा भूमिहीनो के लिए दान देना है। आज प्रत्येक व्यक्ति गाँव मे चाहे जैस भी अधिक-से अधिक जमीन हड़प लेने के चक्कर मे पडा है। इसकी हडप लें, उसकी हडप लें, इसे पचा लें, उसे पचा लें, स्कूल की जमीन, श्मशान की जमीन, गाँव की परती जमीन म से कुछ हडप कर लें। इन सबके सामने यह एक नया ही कदम होगा, कुछ देने का

गरीब को भी लगेगा कि इन लोगों ने हमारे लिए कुछ किया। इससे गाँव में पारस्परिक सम्बन्ध भी कुछ सुधरेंगे।

तीसरी बात यह है कि प्रत्येक आदमी अपने खेत में जो कुछ पैदा करेगा, अथवा नकद कमाई करेगा, उसका 40 वाँ हिस्सा ग्रामकोष में देगा। किसानों को छोड़कर दूसरे अपनी मासिक कमाई में से एक दिन की कमाई देंगे। श्रमजीवी महीने मे एक दिन का श्रमदान करेंगे। इस तरह बाँटने की, छोड़ने की, त्याग की प्रक्रिया सतत चलती रहेगी। इस तरह जो ग्रामकोष खड़ा होगा, उससे गाँव में उद्योग-धन्धे खड़े हो सकेंगे और जरूरतमंदों की सहायता की जा सकेगी। गाँव वाले धीरे-धीरे महाजनों के कर्ज से भी छुटकारा पा सकेंगे।

चौथी बात यह है कि गाँव की एक ग्रामसभा बनेगी, जो पूरे गाँव के हित को ध्यान में रखते हुए सर्वानुमति से काम करेगी।

ये चारो बातें ग्राम स्वराज्य के चारो पाये जैसी हैं। इस प्रकार देखें तो ग्रामदान द्वारा जमीन का सामाजिक स्वामित्व होता है, ग्राम समाज मे बाँट कर जीने की आदत पड़ती है और गाँव का काम-काज सर्वानुमति से चलना आरम्भ होता है। भूमि-व्यवस्था ग्रामसभा के हाथ मे आती है। इस तरह सरकारी विभाग के हस्तक्षेप से गाँव मुक्त बनता है। ग्रामसभा नशाबन्दी का प्रस्ताव कर सकती है और उसके अमल के लिए भी व्यवस्था कर सकती है। ग्रामसभा यह प्रयत्न भी कर सकती है कि गाँव का कोई भी झगड़ा अब कचहरी मे नही जायगा। ग्रामसभा साहूकारो को अधिक ब्याज लेने से रोक सकती है। इस प्रकार ग्राम समाज की समस्यायें ग्राम-समाज के स्तर पर ही हल करने की एक भूमिका ग्रामदान द्वारा तैयार होती है। गाँव में एक नयी चेतना, नयी भावना जगती है।

भारत का हजारों वर्षों का एक इतिहास है। यहाँ अनेक साम्राज्य बने और उनका पतन भी हुआ। फिर भी भारत जीवित रहा। इसका क्या कारण है? एक अंग्रेज इतिहासकार ने लिखा है कि जैसे आँधी मे भीमकाय वृक्ष भी उखड़ जाते हैं, किन्तु क्षीणकाय घास अपनी जगह बनी रहती है, उसी तरह यहाँ साम्राज्य बदलते और टूटते रहे, किन्तु

गांवो मे जो ग्रामराज्य कायम थे, वे जीवित रहे और इसी से भारत जीवित रहा। अंग्रेजी शासन आया, तब जान-बूझकर ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने यह ग्रामराज्य-सस्था तोड दी, क्योकि वही हमारे समाज को बांधने वाली शक्ति थी और वह कायम रहती तो उनकी (अंग्रेजो की) जडें इस देश म बहुत गहराई तक नही जा सकती थी। इसलिए उन्होने गांव के सगठन को तोडा। इस तरह हमारे समाज का अग्रजो ने 'एट-माइजेशन'—विदीर्णीकरण किया। उनके कारण गांवो की दुर्दशा हुई। इन गांवो को उठाने के लिए फिर से उनका सगठन करना होगा और ग्रामदान द्वारा यही काम करना है।

उदाहरण के लिए मॅंगरीठ की बात लें। मॅंगरीठ हमारे देश का पहला ग्रामदान है। जब ग्रामदान हुआ, तब गांव के लोगो ने कहा कि अब हमारा गांव एक परिवार बन गया है इसलिए पूरे गांव की माल-गुजारी ग्रामसभा चुका देगी, फिर वह गाव वाला से हिसाब कर लेगी। किन्तु गाव के पटवारी ने कहा कि वह ग्रामदान को नही मानता। तो गांव वाले इकट्ठे होकर पूरे गांव की मालगुजारी देने गए। तब राजस्व अधिकारी ने कहा कि मुझे इस तरह मालगुजारी लेने का कोई अधिकार नही है। पण्डित गोविन्दवल्लभ पत उस समय उत्तर प्रदेश के मुख्य-मन्त्री थे। बात उन तक पहुँची। वे दूरदर्शी थे। समझ गये कि इतनी अच्छी बात को इन्कार करेंगे, तो सरकार की कितनी बदनामी होगी। उन्होने तुरन्त आदेश दिया कि पूरे गाव की इकट्ठी मालगुजारी ले ली जाय।

तो, यह लोकशक्ति का चमत्कार है। मात्र एक गाव के लिए जब ऐसा आदेश देना पडा, सरकारी रीति-नीति मे फेरबदल करना पडा, तो अधिक ग्रामदान हो, तब तो इस तरह बहुत से फेरबदल हो सकते हैं। जनता मे ऐसी शक्ति आनी चाहिए जिससे राज्य पर उसका प्रभाव पड सके। जनता अपनी शक्ति से अपनी समस्यायें सुलझा सके और राज्य की भी मदद कर सके। ग्रामदान होने से गांव मे एक सगठन बनता है, आपस मे मेल होता है, सामूहिकता की भावना जगती है, कुछ चेतना प्रकट होती है और इस तरह गांव की शक्ति पनपती है।

सरकार को सही दिशा में अगर मोड़ा जा सकता है, तो जनता की सगठित शक्ति द्वारा ही। और ऐसी लोकशक्ति जिसके द्वारा निर्मित हो सकती है, वही क्रान्तिकारी कार्यक्रम है। जब मैं राजनैतिक दल में था, तब दो बार बड़े-बड़े प्रदर्शन आयोजित किए गए थे। हजारों लोग आये थे, सचिवालय की तरफ कूच किया था। लेकिन इन सबसे आखिर होता क्या है ? क्या जनता की कोई शक्ति पनपती है ? जब इन प्रदर्शनों मे गोली चलती है, तो लोग परास्त हो जाते हैं। इसलिए जनता की शक्ति तो ग्रामदान जैसे रचनात्मक कार्यक्रम द्वारा ही सुदृढ़ हो सकती है। लोकसभा के समक्ष एक लाख की भीड़ इकट्ठी कर देने से ऐसी लोक-शक्ति नही पैदा हो सकती। यह भी लोक-शक्ति का एक स्वरूप हो सकता है, किन्तु लोकशक्ति द्वारा निर्माण का विधायक काम करना हो, सच्चे अर्थ मे जिम्मेदार लोक-शक्ति जगानी हो, तो वह ग्रामदान जैसे बुनियादी कार्यक्रम द्वारा ही हो सकेगा।

और ऐसी शक्ति जगाये बिना कोई चारा नही। स्वराज्य का हमारा अनुभव यह हो सकता है कि केवल राज्य द्वारा कोई काम पूरा नहीं होता। मुख्य जिम्मेदारी तो जनता को ही उठानी है। इतनी पंचवर्षीय योजनाओं के अनुभव से हमने देखा कि लोक-जागृति और लोक-संगठन के बिना निर्माण-कार्यों और विकास-योजनाओं के पीछे करोड़ों रुपये खर्च करने के बावजूद कुछ नही हुआ। जब तक जनता का अभिक्रम नही जगता, तब तक इन कामो में प्राण नही आ सकता।

सरकार के पास बहुत अधिक धन है और उस धन से वह बड़े-बड़े काम कर सकने में समर्थ है, ऐसा मानना भी एक भ्रम है। सरकार के पास जो शक्ति है, वह जनता की शक्ति की तुलना मे बहुत कम है। एक उदाहरण दूँ। अभी मैं बिहार के मुसहरी प्रखण्ड मे काम कर रहा था, वहाँ मैंने देखा कि चालू वर्ष मे इस प्रखण्ड के लिए सरकार की तरफ से मात्र 15,000 रुपये ही आवटित किए गये हैं, किन्तु ग्रामदान के कार्यक्रमानुसार यदि प्रत्येक गाँव अपनी पैदावार का 40 वां हिस्सा ग्राम-कोष में जमा करे और इस प्रकार यदि एक हजार रुपये भी एकत्र करे, तो पूरे प्रखण्ड में 121 गाँव होने के कारण 1,21,000 रुपये इनके

हाथ आ सकते हैं। इसके अलावा भूमिहीन मजदूरो के श्रमदान से हजारो मनुष्य-दिन प्राप्त हो सकते हैं। यानी कि एक प्रखण्ड के विकास के लिए जहाँ राज्य-शक्ति जब मात्र 15,000 रुपये ही खर्च कर सकती है, वहाँ लोक-शक्ति 1,21,000 रुपये खर्च कर सकती है। ग्रामदान गाँव की कितनी अधिक बिखरी हुई साधन-शक्ति को इकट्ठी कर सकता है, इस बात का कुछ ख्याल इससे आयेगा।

लोक-कल्याणकारी राज्य का नाम लेना तो आजकल एक फैशन हो गया है। लेकिन वह आयेगा कितने वर्षों मे, वह तो भगवान ही जाने। योजना-आयोग पचवर्षीय योजनाओ के बाद भी देश की क्या स्थिति रहेगी, उसका जो चित्र प्रस्तुत करता है, वह भयानक है, जब कि ग्रामदानी गाँव मे तो आज से ही लोक-कल्याणकारी राज्य का आरम्भ हो सकता है। गाँव मे कोई भूखा न रहे, नगा न रहे, बेकार न रहे, इसके लिये पूरा गाँव विचार करने लगे और सामूहिक प्रयत्न शुरू कर दे तो गाँव मे कल्याणकारी ग्रामराज्य की शुरुआत हो जाय। यह सब गाव-गाँव मे लोक-शक्ति जगाये बिना सम्भव नही है।

किन्तु आज हमारे देश मे लोक-शक्ति का नितान्त अभाव है। मिल-जुलकर काम करने की मनोवृत्ति नही हैं। यदि पाच आदमी कोई काम करते होंगे, तो उसे बिगाडने के लिए दूसरे पाँच तैयार हो जाते हैं। जब तक हम इस मनोवृत्ति को नही छोडेंगे और मिल-जुलकर अपना काम स्वय करने की शक्ति नही खडी करेंगे, तब तक दिल्ली की गद्दी पर आप चाहे जिसे बैठा दें, देश आगे नही बढ सकेगा। ग्रामदान द्वारा जनता का अभिक्रम पैदा होता है, गाँव मे एक सगठन बनता है, ग्रामभावना जगती है। इससे गाव के निर्माण के लिए, ग्रामस्वराज्य की स्थापना के लिए शक्ति प्रकट होती है। यह बहुत बडी बात है। इसके बिना साढे पाच लाख गाँवो का उत्थान कैसे हो सकता है?

स्वराज्य की लडाई मे हमे त्याग की दीक्षा मिली थी। किन्तु स्वराज्य मिल जाने के बाद हम उसे भूल गए और भोग के पीछे पड गये। बस, लेना ही लेना है, जितना मिल सके उतना लाभ लेना है, देना कुछ नही है, ऐसा एक मानस देश मे बन गया है। इस मानस को, इस

विपरीत प्रवाह को बदलना पड़ेगा। कुछ देना शुरू करें। त्याग की शक्ति की महिमा तो वेदकाल से गायी जाती रही है। किन्तु यहां तो त्याग की बात को एक स्थूल कार्यक्रम बनाकर ग्रामदान के रूप में विनोबाजी ने हमारे समक्ष रखा है। मालिकी छोड़ने की बात, भूमि का बीसवां भाग देने की बात, वर्ष में उपज का चालीसवां भाग देने की बात। इससे देने वाले के मानस मे कुछ परिवर्तन होगा। लेने की जगह देने की बात। गीता, रामायण, कुरान, बाइबिल आदि को आचरण में उतारने का एक स्थूल कार्यक्रम। हमारे देश मे बड़े-से-बड़े चिन्तकों का भी सबसे बड़ा दोप यह रहा कि उन्होने महान् विचार तो रखे, किन्तु उसे व्यवहार में लाने का मार्ग नही बताया। महापुरुषों ने सारी बातें कही हैं, फिर भी आज समाज की कैसी हालत है? कौन बुद्ध के रास्ते पर चल रहा है? कौन ईसा के बताए रास्ते से चल रहा है? कौन मोहम्मद के मार्ग पर चल रहा है? यानी ये सब केवल बातें ही बातें रह जाती हैं। अतः इन सब बातों को हमें अपने जीवन में अपने पड़ोसी के जीवन मे, गांव के जीवन में दाखिल करना होगा। इसके लिए ही यह ग्रामदान-ग्रामस्वराज्य का कार्यक्रम है, यह एक नैतिक उत्थान का बहुत बडा व्यापक और गहरा कार्यक्रम है। जो वस्तु बहुत प्यारी है, मालिकी उसे छोड़ना। जो भूमि प्यारी है, उसका कुछ भाग छोड़ना। मेहनत से जो पैदा किया जाता है, उसमे से नियमित देते रहना। ये कुछ छोटी बातें नहीं हैं। इनसे जो शक्ति पैदा होती है, वह शक्ति का नया समाज निर्माण कर सकती है। एक अच्छा समाज बनाने की अनुकूलता गांव में पैदा होती है।

यों देखने जायेंगे, तो देश में अनेक प्रश्न हैं, अनेक तरह की समस्याएं हैं। हजार जगह हजार तरह की परिस्थितियां हैं। तो क्या अलग-अलग प्रश्न लेकर उसे सुलझाने का प्रयत्न करेंगे? उससे क्या कोई शक्ति पैदा होगी? अनेक प्रकार की समस्याएं हैं, उनके मूल में जाना होगा। रोग के भिन्न-भिन्न लक्षण दीखते हैं, उसे लेकर कब तक इलाज करते रहेंगे? मूल रोग को ही समझना चाहिए। और मूल में जाकर इलाज करना चाहिए। उसका जड़-मूल से नाश करने का प्रयत्न

लोक नायक जयप्रकाश नारायण गत कई दशकों से राष्ट्र सेवा मे लीन हैं। यह दुर्लभ चित्र १९४६ का है जब लाहौर मे वह अपने प्रशंसकों को हस्ताक्षर दे रहे हैं

देश विभाजन से पूर्व १९४६ में श्री तथा श्रीमति जयप्रकाश नारायण प्रसिद्ध मुस्लिम नेता मुंशी अहमद दीन के साथ

नता जी सुभाष की पार्टी के इडियन नशनल आर्मी क जनरल मोहन सिह के साथ
लोक नायक १९४६ मे

यह चित्र भी १९४६ का है जब जयप्रकाश नारायण सपत्नीक जम्मू जाते हुए लाहौर रुके थे और विभिन्न वर्गों के नेताओं से मिले। श्री नारायण आरम्भ से धर्म निरपेक्ष राज्य के हामी रहे हैं।

हरिद्वार में समाजवादी कांग्रेस की एक सभा में भाषण करते हुए श्री जयप्रकाश नारायण

जय प्रकाश जी को सभी धर्मों में विश्वास रहा है   जैन धर्म के आचार्य तुलसी के साथ उनका यह चित्र आज दुर्लभ है।

गभीर मुद्रा मे लोकनायक श्री जयप्रकाश नारायण

श्री नारायण और उनकी पत्नि श्रीमति प्रभा नारायण जिनके विछोह ने जय प्रकाश जी के जीवन को एकाकी कर दिया

श्री नारायण का विश्वास था कि हमारे देश के लिए सम्पूर्ण स्वतंत्रता आवश्यक है — और इसी लिए उन्होंने इस नई लड़ाई में अपने स्वास्थ्य की परवाह न करते हुए भाग लिया।

श्री जयप्रकाश की सर्दव विश्व राजनीति में दिलचस्पी रही। इस चित्र में वह विभिन्न देशों के नेताओं के साथ बंगला देश के सम्बन्ध में हुई एक सभा में भाग लेते हुए।

श्री जयप्रकाश की सदैव विश्व राजनीति में दिलचस्पी रही। इस चित्र में वह विभिन्न देशों के नेताओं के साथ बंगला देश के सम्बन्ध में हुई एक सभा में भाग लेते हुए।

करना चाहिए।

इसलिए बुनियाद से ही ग्रामदान जैसा कोई रचनात्मक कार्यक्रम शुरू करना पडेगा। जनता को यह समझाना पडेगा कि वास्तव मे देश की समस्याओ का हल आपके और मेरे हाथ मे है। कोई दूसरा आकर हमारा उद्धार नही कर सकेगा। लोगो मे आत्मविश्वास पैदा करना होगा, उन्हे अपने कार्य अपने आप पूरे करने के अवसर और साधन उपलब्ध कराने होगे। उन्हे अपने गाँव की व्यवस्था सभालने के लिए तैयार कर लोकतन्त्र की नीव मजबूत करनी होगी। इसके लिए बहुत से उपयुक्त कार्यक्रम चलाने पडेंगे, किन्तु उनके साथ साथ ऐसा होगा, तभी देशभर मे उसका प्रभाव पडेगा, देश के आयोजन पर प्रभाव पडेगा, गाँवो मे बसी 80 प्रतिशत जनता की आवाज सुनायी पडेगी। आज तो आयोजन के सम्बन्ध मे या दूसरी बातो के सम्बन्ध मे कुछ भी कहे, उसका ज्यादा असर नही पडता, क्योकि हमारे शब्दो के पीछे कोई लोक-शक्ति नही है। लोक आन्दोलन खडा हो तो लोक-शक्ति जगे और फिर *आयोजको के साथ, अर्थशास्त्रियो के साथ* और सरकार के साथ देश के लाखो गाँवो की तरफ से बात की जाय।

हमारे सौभाग्य से देश मे ग्रामदान का यह आन्दोलन चला। इसमे से एक शक्ति प्रकट हुई, एव आशा बनी। लेकिन अभी तो बहुत ही कम ताकत इस आन्दोलन के पीछे लगी है। यदि बडे-बडे नेता और देशभर के कार्यकर्ता केवल सात दिन भी एक साथ इस काम मे लगे होते, तो निराला ही दर्शन होता। चुनाव के समय जैसे लोग गाडी, घोडा और जीप लेकर निकल पडते हैं, लोगो के कान फट जाएँ, ऐसा जोरदार प्रचार रात दिन करते हैं, करोडो रुपये पानी की तरह खर्च होते हैं और सब लोग आकाश पाताल एक कर देते हैं, इस तरह की सगठित ताकत यदि इस आन्दोलन के पीछे लगी होती, तो आज की अपेक्षा बहुत अच्छा परिणाम आया होता।

फिर भी, अब इस आन्दोलन का जो परिणाम आया है, वह भी कम आशाजनक नही है। गाँधीजी के अहिंसक मार्ग से सर्वोदयी समाज-रचना की बुनियाद डालने का यह काम है, यद्यपि अभी बहुत कुछ करना

है। यह तो मात्र पहला चरण है। मैं उन बहुत सारे आलोचकों से सहमत हूँ जो यह कहते हैं कि ग्रामदान अभी कागजों मे है। उसे धरती पर उतारना है।

लेकिन यों देखें तो लोकसभा और विधानसभा में जो कुछ होता है, वह पहले तो कागज पर ही होता है न ! कानून बनते हैं, वे भी कागज पर ही न ! 25 वर्षों मे कितने कानून बने होगे ? उनमें से मात्र 10 प्रतिशत मुश्किल से व्यवहार में आये होगे। विनोबाजी ने ठीक ही कहा है कि आखिर चुनाव में क्या करते हैं ? कागज का टुकड़ा ही डालते हैं न ? किन्तु उस कागज मे इतनी ताकत है कि हकूमत बदल जाती है, हकूमतें। जब कि इसमे से जनता स्वयं कुछ करने का संकल्प लेती है।

इसलिए यह सही है कि अब तक ग्रामदान के लिए व्यापक लोक-सम्मति प्राप्त करने का ही आन्दोलन चला है। ग्रामदान की शर्तों के लिए ग्राम-जनता की सम्मति लेने पर सारा ध्यान केन्द्रित था। यह समझने की बात है कि वास्तव में इस आन्दोलन का उद्देश्य कुछ छिटपुट 'आदर्श गाँव' बनाना नही, समाज-परिवर्तन के लिए सर्वसामान्य लोक-मानस तैयार करना है। दस-बीस पचास गाँवों के नमूने बनाकर रखें और चारो तरफ का समाज जैसे-का-तैसा ही रहे, तो ये नमूने समुद्र-मध्य केटापुओं की तरह गर्क हो जायेंगे। ये नमूने समुद्री थपेड़ों के आगे टिक नही सकेंगे। नमूने बनाकर दिखाने से क्रान्ति हो सकेगी, यह एक बहुत बड़ा भ्रम है। इसीलिए बड़े-से-बड़े प्रदेश को इस आन्दोलन के दायरे में लाने की कोशिशें हुई। अब जहाँ-जहाँ ग्रामदान के संकल्प लिये गये हैं, वहाँ-वहाँ इस संकल्प को व्यवहार मे लाने का दूसरा चरण शुरू किया गया है। बिहार के मुसहरी-प्रखण्ड के इस दूसरे चरण के लिए ही मैं जाकर बैठा हूँ।

भूदान और ग्रामदान के बाद आज इस आन्दोलन का तीसरा चरण है, ग्राम-स्वराज्य। अब तक जितना काम हुआ है, उस हिसाब से अभी जो करना शेष है, वह समुद्र जैसा विशाल है। यह काम मात्र वे मुट्ठीभर सर्वोदय-कार्यकर्ता नही कर सकते और हरगिज सरकारी एजेन्सियों और कर्मचरियों से भी यह नहीं होने वाला है। हाँ, इन सबसे हमें मदद मिलेगी,

लेकिन मुख्य जिम्मेदारी ग्रामीण समुदायो को स्वय ही उठानी होगी। सर्वोदयकी सामुदायिक राज्यव्यवस्था (कम्युनिटोरियन पालिसी)-लोक-नीति-के एक-एक स्तर का, बुनियाद से शुरू कर शीर्ष तक, निर्माण करना होगा। यह हमारे सामने प्रमुख चुनौती है, केवल सर्वोदय वालो के सामने नही, बल्कि सच पूछा जाय तो जो भी शान्तिमय समाज परिवर्तन और विकास मे विश्वास रखते हैं, उन सबके सामने यह एक खरी चुनौती है। एक भगीरथ काम है यह, किन्तु उसे बिना किये आज की अनेकविध समस्याओ का दूसरा कोई हल भी नही है। इस आन्दोलन का मेरा जो अनुभव है, उसके आधार पर मैं दृढतापूर्वक कह सकता हूँ कि जिस श्रद्धा से मैं इस आन्दोलन मे आया, वह श्रद्धा दिन-प्रतिदिन दृढ होती जा रही है। अपने प्रत्यक्ष अनुभव से मैं इस नतीजे पर आया हूँ कि जीवन तथा समाज की सारी समस्याएँ हल करने की शक्ति इस प्रक्रिया मे है।

सर्वोदय वादी

धर्म समन्वय के लिए आचार्य विनोबा भावे ने बोध गया मे 'समन्वयाश्रम' की स्थापना की और जयप्रकाश जी ने गया जिले के सोखोदेवरा गाँव म सर्वोदय आश्रम की। यह गाँव बहुत पिछडा हुआ था और जगल तथा पहाडो से घिरा था। सोखोदेवरा गाँव की विशेपता यह थी कि इसने ब्रिटिश हकूमत के दौरान किसान आन्दोलन मे भाग लिया था। इस सर्वोदय आश्रम मे युवक युवतियो के झुंड आने लगे और सर्वोदय का काम बढने लगा। प्रभावती और निर्मला देशपाडे का आश्रम के निर्माण मे प्रमुख सहयोग था।

आरम्भ मे कुछ झोपडियाँ बनायी गयी। रात को वहाँ जगली जानवर आते थे। आश्रम की देख-भाल प्रभावती के कन्धो पर थी। जे०पी० उन दिनो मधुमेह से पीडित थे। सुबह से शाम तक प्रभावती आश्रम की व्यवस्था म लगी रहती, भोजन, सफाई और व्यवस्था आदि हर मामला वही सम्भालती थी। कार्यकर्त्ता जे०पी० तक पहुँचने मे सकोच करते थे। वह प्रभावती के सामने दिल खोलकर अपनी समस्याएँ रखते। प्रभावती पूरे आश्रम की दीदी कहलाती थी। सब स्थायी रूप से जे०पी० आश्रम मे रहने लगे। भूदान आन्दोलन में वे इधर-उधर दौरे

पर जाते थे, लेकिन स्थायी आवास सर्वोदय आश्रम ही था।

22 अक्टूबर, 1954 को पटना के अंजुमन इस्लामिया हाल में प्रजासोशलिस्ट पार्टी की बिहार शाखा के सदस्यों की सभा में जयप्रकाशजी ने दल छोड़ने और अपना जीवन सर्वोदय के कार्य में लगा देने की घोषणा की। उन्होंने कहा कि अब एक और फैसला कर लिया है कि अब से मैं कमेटियों या आप की दूसरी बैठकों में सलाह देने के लिए शिरकत नहीं करूंगा। इस फैसले से लाभ हो या हानि। मैंने ऐसा फैसला क्यों किया इस पर मुझे कुछ नहीं कहना है।

30 जनवरी, 1955 को सर्वोदय आश्रम में उन्होंने प्रभावती के साथ उपवास किया। जे०पी० ने मांस खाना छोड़ दिया। सर्वोदय के कार्य के लिए वे देशभर के दौरे करते थे हालांकि मधुमेह से बराबर पीड़ित थे।

12 और 13 अगस्त 1955 को पटना में पुलिस ने छात्रों पर गोली चलायी। जयप्रकाश ने इसके लिए सरकार की कटु आलोचना की जिससे उनका प्रधानमंत्री श्री नेहरू से रहा-सहा सम्बन्ध भी टूट गया। उन्होंने डा० राजेन्द्रप्रसाद से भी पत्र लिखकर राष्ट्रपति पद छोड़ने का अनुरोध किया।

19 फरवरी, 1956 को इरोड़ में आचार्य नरेन्द्रदेव का देहान्त हो गया। जे०पी० को मार्मिक आघात लगा। वे शोक-विह्वल हो गये। जयप्रकाश दल छोड़ना चाहते थे। 1955 में समाजवादी नेताओं में मतभेद उत्पन्न हो गये थे। प्रजा सोशलिस्ट पार्टी विभाजित हो गई थी। डा० राम मनोहर लोहिया ने सोशलिस्ट पार्टी के नाम से अलग दल का गठन किया। 1957 के आम चुनाव में प्रजासोशलिस्ट पार्टी और सोशलिस्ट पार्टी एक दूसरे के विरुद्ध मैदान में थी। जयप्रकाश दोनों दलों से अलग रहे।

तभी योरोप की समाजवादी और शांतिवादी संस्थाओं ने उन्हें योरोप यात्रा के निमंत्रण दिये। अप्रैल 1958 में प्रभावती के साथ इग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी, साइप्रस, डेनमार्क, बेलजियम, स्विटजरलैंड, हालैंड, नार्वे, आस्ट्रिया, इटली, स्वीडन, ग्रीस, पोलैंड, यूगोस्लाविया,

इजराइल, लेबनान, मिस्र, और पाकिस्तान की यात्रा की। वे साढ़े चार महीने विदेश मे रहे। विदेशो से उन्होने राजनीतिज्ञो और बुद्धिजीवियो से विचार-विमर्श किया और पचास जनसभाओ मे भाषण किये।

1959 मे चीन ने तिब्बत पर कार्रवाई की। जे०पी० ने तिब्बत के मामले मे मानवीय अधिकारो का प्रश्न उठाया। मई मे कलकत्ता और मद्रास मे तिब्बत सम्मेलन किये गये। मानवीय स्वतन्त्रता के प्रश्न पर उन्होने अपनी आवाज बुलद की। उन्होने कलकत्ता मे आयोजित तिब्बत सम्मेलन की अध्यक्षता की।

सितम्बर 1961 मे उन्होने लदन मे विश्व शातिवादियो द्वारा आयोजित निशस्त्रीकरण परिषद के सम्मेलन मे भाग लिया। दिसम्बर मे आध्र मे बेग्रोल मे *तेरहवें अखिल भारतीय सर्वोदय सम्मेलन* मे जे०पी० ने विश्व शाति सेना के गठन का आह्वान किया। इस सम्मेलन मे विनोबा जी नही थे। बेरुत मे विश्वशाति सभा का निर्माण हुआ जिसके तीन अध्यक्ष थे—माइकेल स्काट, ए०जे० मान्टे और जयप्रकाश। इसे विनोबा, माइकेल स्काट, मार्टिन लूथर किंग, रसेल, कैनेथ कोडा और ज्यूलिस न्येरेरे आदि का सहयोग प्राप्त था।

अगस्त 1963 मे विनोबा ने बिहार यात्रा के दौरान कहा कि बिहार सर्वोदय मडल को भग कर दिया जाय। 31 अगस्त को मडल की बैठक जयप्रकाशजी की अध्यक्षता मे हुई। बिहार प्रादेशिक सर्वोदय मडल भग हो गया। उन्होने ग्रामदान और शाति सना के कार्य को आगे बढाया। उनके शाति प्रयास और मानवाधिकार की हिमायत के लिए 31 अगस्त 65 को उन्हे रेमन मैगसेसे पुरस्कार देने की घोषणा की गयी।

12 अक्टूबर, 1966 को डा० राम मनोहर लोहिया का देहान्त हो गया। ये जयप्रकाश के लिए प्राणघातक व्यथा थी। वे बुरी तरह आहत हुए। एक पुराना कर्मठ साथी और मित्र सदा के लिए बिछुड गया। जे०पी० को लगा जैसे चारो ओर अधेरा हो गया है और वे अकेले रह गये हैं लेकिन मृत्यु पर किसी का वश नही चलता।

25 अक्तूबर, 1957 को प्रजासमाजवादी दल की सदस्यता छोडते

समय उन्होंने दल के सदस्यों को एक पत्र लिखा था जो पत्रों में प्रकाशित हुआ। अखिल भारत सर्व सेवा संघ ने इसे पुस्तकाकार प्रकाशित किया। 'समाजवाद से सर्वोदय की ओर' शीर्षक इस पत्र में उन्होंने कहा है—लोगों के मन पर राजनीति का ऐसा प्रभाव है और इसका विकल्प अब भी ऐसी प्रारम्भिक स्थिति में है कि बहुत सम्भव है इस वक्तव्य को पढने वाले अनेक लोगों को मैं समझा नहीं पाऊँगा। परन्तु मुझे इतनी आशा अवश्य है कि इस वक्तव्य से पारस्परिक समझदारी बढ़ेगी और इसमें जिन विचारों का मैंने प्रतिपादन किया है उनमें लोगों की रुचि बढ़ेगी।

इस बात का एक दूसरा पहलू भी है। हर व्यक्ति की दृष्टि अपनी ही विशिष्ट भूमिका से देखने की होती है। जो लोग उन अनुभवों से नहीं गुजरे हैं, जिनसे मैं गुजरा हूँ और न उन आदर्शों की साधना की है जो मेरे आदर्श रहे हैं वे सम्भवतः मेरी तर्क सरणि को ग्रहण नही कर पायेंगे। समाजवाद या वर्ग संघर्ष अथवा राजनीतिक कार्य या संसदीय लोकतंत्र के नवानुरागी मेरी बातों को नही समझ सकेंगे। जब तक कि उनमें यह जिज्ञासा नही पैदा होती कि अपने अनुराग में जो त्रुटियाँ उन्हें नजर आयी हैं उनका निदान क्या है। मैं कदापि यह संकेत नहीं कर रहा हूँ कि मैंने सभी सामाजिक समस्याओं का निर्दोष समाधान पा लिया है अथवा सर्वोदय ही सामाजिक दर्शन का अन्तिम शब्द है। मनुष्य निरन्तर सत्य की ओर बढ़ रहा है, क्योंकि वह स्वभाव से ही जिज्ञासु प्राणी है। वह अन्तिम सत्य पर पहुँचने मे तो कभी समर्थ नही होगा, परन्तु असत्य का क्रमशः निराकरण करते हुए वह सत्य के निकट पहुँच सकेगा। इसमें संदेह नही कि भविष्य मे सर्वोदय के विचार और व्यवहार में अनेक दोष प्रकट होगे और वे दूर भी होगे। और इस प्रकार मानव मस्तिष्क सत्य की दिशा में आरोहण करता जायेगा। लेकिन मैं यह अवश्य मानता हूँ कि सर्वोदय वर्तमान सामाजिक दर्शनों एवं व्यवस्थाओं से स्पष्ट रूप में आगे के कदम का प्रतिनिधित्व करता है। मैं इस निष्कर्ष पर जिस प्रक्रिया से होकर पहुँचा उसको समझाने का प्रयास करूँगा। यह वक्तव्य किसी भी रूप में सर्वोदय दर्शन की

पूर्ण व्याख्या नही है, ऐसी कोई व्याख्या करने के लिए मेरे पास पर्याप्त साधन भी नहीं है। यह तो केवल मेरे अपने चिन्तन के विकास की कहानी है, जिसके फलस्वरूप मैंने अन्तत राजनीति का परित्याग किया। किसी बाहरी व्यक्ति को मेरा अतीत जीवनपथ अस्थिरता तथा अधान्वेषण का टेढ़ा मेढा वक्र रेखाचित्र जैसा प्रतीत होगा। लेकिन जब मैं पीछे मुड़कर देखता हूँ तो उसमे मुझे विकास की एक जैसी शृखला दिखायी पड़ती है।

जीवन भर के साथियो से सम्बन्ध विच्छेद कर लेना कभी आसान नहीं होता। हमने एक साथ काम किया है साथ साथ कारावास के कष्ट सहे हैं भूमिगत जीवन के जोखिमो से गुजरे हैं और स्वतन्त्रता की राख उडते देखी है। हम सबको अभी बहुत दूर जाना बाकी है।

परन्तु कम से-कम जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है मैं अपने को यात्रा के ऐसे मोड पर पाता हूँ जहाँ मुझे आपका साथ छोडकर अकेले ही बाकी राह तय करने का निश्चय कर लेना चाहिए। अगर मैं आपको समझा बुझाकर अपने साथ ले चल सकता तो मेरे हृदय को असीम आनन्द होता। परन्तु मैं समझता हूँ, कम से-कम इस समय तो यह सम्भव नही है। तथापि मुझे आशा है कि हमारे आपके रास्ते अवसर मिलेंगे और यात्रा के अन्त मे वे एक हो जायेंगे। हम भले ही यह समिद्धि देखने के लिए जीवित न रह जायें, परन्तु मेरा विश्वास है कि यदि दुनिया को कभी शान्ति स्वतन्त्रता एव भ्रातृत्व के आश्रय स्थल पर पहुँचना है तो समाजवाद को अन्तत सर्वोदय म विलीन होना ही पडगा।

चार वर्ष पूर्व बोध गया सर्वोदय सम्मेलन के अवसर पर मैंने राजनीति छोडने का निणय लिया था। परन्तुप्रजा समाजवादी दल का सदस्य मैं बना रहा यद्यपि कभी कभी दल की बैठको मे शामिल होने या यदा कदा कुछ सलाह देने के अतिरिक्त मैंने उसके कायक्रमो मे कोई भाग नही लिया। विगत आम चुनाव से कुछ समय पूव मैं इस निश्चय पर पहुँचा कि मुझे प्रजा समाजवादी दल की निष्क्रिय सदस्यता भी छोड देनी चाहिए। परन्तु आचायजी बीमार थे और मैं नही चाहता

यह संकेत नही कर रहा हूँ कि मैने सभी सामाजिक समस्याओ का निर्दोप समाधान पा लिया है अथवा सर्वोदय ही सामाजिक दर्शन का अन्तिम शब्द है। मनुष्य निरन्तर सत्य की ओर बढ रहा है, क्योकि वह स्वभाव से ही जिज्ञासु प्राणी है। वह अन्तिम सत्य पर पहुँचने मे तो कभी समर्थ नही होगा, परन्तु असत्य का क्रमश निराकरण करते हुए वह सत्य के निकट पहुँच सकेगा। इसमे सन्देह नही कि, भविष्य मे, सर्वोदय के विचार और व्यवहार मे अनेक दोष प्रकट होगे और वे दूर भी होगे, और इस प्रकार मानव-मस्तिष्क सत्य की दिशा मे आरोहण करता जायेगा। लेकिन मैं यह अवश्य मानता हूँ कि सर्वोदय वर्तमान सामाजिक दर्शनो एव व्यवस्थाओ से स्पष्ट रूप से आगे के कदम का प्रतिनिधित्व करता है। मैं इस निष्कर्ष पर जिस प्रक्रिया से होकर पहुँचा, उसको समझाने का प्रयास करूँगा। निम्नाकित वक्तव्य किसी भी रूप मे सर्वोदय-दर्शन की पूर्ण व्याख्या नही है, ऐसी कोई व्याख्या करने के लिए मेरे पास पर्याप्त साधन भी नही है। यह तो केवल मेरे अपने चिन्तन के विकास की कहानी है, जिसके फलस्वरूप मैंने अन्ततः राजनीति का परित्याग किया।

अपने युवा काल मे मै अधिकाश युवको के समान एक उग्रराष्ट्रवादी था और मेरा झुकाव क्रान्तिकारी पथ की ओर था। किन्तु दक्षिण अफ्रीका मे हुए सत्याग्रह से मैं उस ओर आकृष्ट हुआ और गाधीजी के प्रभाव मे आ गया। फिर सयुक्त राज्य अमेरिका मे मैंने मार्क्सवाद और सोवियत साम्यवाद के तत्कालीन रूप को अध्ययन के बाद स्वीकारा। स्वतन्त्रता अब भी अपरिवर्तित लक्ष्य रही। उस समय उसकी प्राप्ति के लिए गाधीजी के सविनय अवज्ञा और असहयोग आन्दोलन के मुकाबले मार्क्सवादी क्रान्ति मुझे अधिक उपयुक्त लगती थी। किन्तु धीरे-धीरे मैंने समझा कि गाधीजी के मार्ग के बिना कोई निस्तार नहीं है। 1929 के अन्त मे जब मैं अमरीका से स्वदेश लौटा तो भारतीय परिस्थितियो को देखकर मैं समझा कि साम्यवाद यहाँ के लिए उपयुक्त नही है। मार्क्सवाद मे मेरी निष्ठा बढी थी। तब मुझे अपने प्रमुख सहयोगी श्री राममनोहर लोहिया, मसानी, अच्युत

पटवर्धन और अशोक मेहता से विचार-विनिमय का पूरा-पूरा अवसर मिला और आचार्य नरेन्द्रदेव जैसे सम्मानित सहयोगी के साथ मैं संयुक्त समाजवादी-साम्यवादी कार्यक्रम की ओर आकर्षित हुआ। अन्ततोगत्वा मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि लोकतान्त्रिक समाजवाद ही समस्या की कुंजी है। मेरा मस्तिष्क निरन्तर ऊहापोह में लगा रहा और मैं कदम-कदम आगे बढ़ाता जा रहा था।

स्वतन्त्रता, समता और बन्धुता के जिन पुराने संकेत दीपों ने मुझे आलोकित किया था, वही मुझे सर्वोदय की ओर ले चले। समाजवाद से सर्वोदय की यात्रा एक स्वाभाविक परिणति थी और उसके बाद मैं पहुँचा भूमिदान, ग्रामदान, सम्पत्तिदान आन्दोलन की ओर। किन्तु यह सब लोकतन्त्र को विकसित करने में एक प्रमुख साधन है और घटनाओं ने मुझे वहाँ पहुँचा दिया कि मैं राजनीति से विमुख हो जाऊँ।

चंबल की घाटी में

भगवान गौतम बुद्ध के समक्ष डाकू अंगुलिमाल ने आत्मसमर्पण किया था। यह भारत की ही धरती है जहाँ दानवती संतों के आगे झुकती रही है। यह आश्चर्य बीसवीं शती में जे०पी० ने कर दिखाया। सारा विश्व चकित रह गया जब चंबल के डाकुओं ने जे०पी० के चरणों में हथियार रख दिये और शपथ ली कि वे अब अपराध की दुनिया से दूर रह कर सात्विक और सीधे-सादे मनुष्य का जीवन बितायेंगे। जे०पी० ने इन्हें डाकू नही बागी कहा जो सामाजिक कारणो से गुमराह हो गये थे या विभिन्न मजबूरियों के कारण अपराध करने के लिए विवश थे। उन्हे बागी कहना उचित था जिन्होने समाज से बगावत की थी।

इस समर्पण की कहानी भी काफी रोचक है जो अक्तूबर सन् 1971 से शुरू होती है। पटना के कदमकुँआ में जे०पी० ठहरे। दोपहर के समय एक लम्बे चौड़े डील डौल का व्यक्ति उनसे मिलने आया और बोला कि मैं चंबल घाटी मे जंगल की ठेकेदारी करता हूँ और बागियों का संदेश लाया हूँ। उसने अपना नाम रामसिंह बताया। जे०पी० ने आगे पूछा तो आगन्तुक ने कहा कि डाकू आपके समक्ष आत्म समर्पण

करना चाहते हैं।

जे०पी० ने सलाह दी कि इस बारे में विनोबा जी से बातचीत कर। जे०पी० उठकर जाने लगे तो रामसिंह ने रास्ता रोक लिया। अगर आप राजी हो जाय तो मात्र दस बीस नहीं सारे डाकू आपके सामने हथियार डाल देंगे।

जे०पी० को विश्वास नही हुआ। जे०पी० ने पुन विनोबा जी के पास जाने को कहा तो उत्तर मिला कि विनोबा जी ने ही आपके पास भेजा है। यह भी सर्वोदय का काम है।

जब जे० पी० नहीं माने तो रामसिंह ने बताया कि मैं डाकू माधोसिंह हूँ यह सुनकर जे०पी० दग रह गये। अभी तक वह रामसिंह नामक किसी नकली व्यक्ति से नही बल्कि डाकू माधोसिंह से बातचीत कर रहे थे। जे०पी० ने कहा—आप पर डेढ लाख रुपये का इनाम है। यहाँ आने का खतरा आपने कैसे मोल लिया। माधोसिंह ने कहा—आप पर हम लोगो को पूरा यकीन है, इसलिए आ गया।

अब अधिक सोचने का समय नही था। जे०पी० को विश्वास हो गया कि डाकू वास्तव मे गलत रास्ता छोडना चाहते हैं। उनकी आत्मा प्रकाश से भर उठी। उन्होंने निश्चय कर लिया कि डाकुओ को सत्य और शिव के मार्ग पर लाकर गुमराह जिंदगिया का उद्धार करेंगे। डाकू माधोसिंह ने उसी समय समर्पण कर दिया। माधोसिंह उन्ही के यहाँ रहा, लेकिन इसकी खबर किसी को भी नही लगने दी केवल, प्रभावती को यह रहस्य मालूम था। माधोसिंह ने बताया कि डाकू चाहते हैं कि उन्हे कोई भी सजा मिले लेकिन मृत्युदड न दिया जाय। जयप्रकाश को यह बात पसद आयी, उन्होंने अपनी स्वीकृति दे दी। इससे पहले 1960 म विनोबा जी ने डाकुओ से आत्म-समर्पण कराया था इसलिए जयप्रकाश ने आरम्भ म माधोसिंह स कहा था कि वे विनोबा भावे के पास जाएँ। लेकिन माधोसिंह से पता चला कि विनोबा जी यह कार्य जे०पी० के कन्धो पर डाल रहे थे। सर्वोदय के कायक्रम म एक और आयाम जुड गया।

माधोसिंह को सर्वोदय आश्रम मे छिपा दिया गया। केन्द्रीय गृह

न्त्री और मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, और राजस्थान के मुख्यमन्त्रियों से इस सम्बन्ध में बातचीत की। सन् 1960 में चंबल घाटी शांति मिशन विनोबा जी ने बनाया था। मिशन के मंत्री श्री महावीर से जयप्रकाश जी ने सम्पर्क किया। चंबल घाटी शांति मिशन का काम अब जयप्रकाशजी ने महावीर और हेमदेव शर्मा को सौंपा। चरणसिंह और पंडित लोकमन के सहयोग से शांति मिशन का काम आगे बढ़ने लगा। कुख्यात डाकू लुक्का का नामकरण पंडित लोकमन किया गया था। अब उन्होंने डाकेजनी त्याग दी थी।

नवम्बर में जयप्रकाशजी अस्वस्थ हो गये। दिसम्बर में उन्होंने चंबल घाटी के बागियों के लिए जारी एक अपील में उनसे कहा कि वे आत्म समर्पण कर दें। उस समय बंगलादेश की लड़ाई जोर पर थी। जे०पी० की अपील की प्रतियाँ चंबल घाटी में बांटी गयी। माधोसिंह ने पूछा कि क्या बागियो को समाज स्वीकार करेगा। इस प्रश्न ने सरकार को अस्त-व्यस्त कर दिया और सरकारी तंत्र व्यवस्था में लग गया। फरवरी 1972 में डाकू मानसिंह के पुत्र तहसीलदारसिंह को रिहा कर दिया गया। उनकी रिहाई के पीछे जे०पी० का प्रयत्न और परिश्रम था। आगरा से 50 बागियों ने खबर भेजी कि वे आत्म-समर्पण करना चाहते हैं।

फरवरी में दिल्ली के आल इंडिया इंस्टीटियूट में जे०पी० की चिकित्सा की गयी। 1 मार्च, 1972 को माधोसिंह ने दिल्ली में जे०पी० से मुलाकात की। वह जे०पी० को पूज्य पिताजी कहता था। पत्रों में भी यही लिखता था।

11 अप्रैल, 1972 को प्रभावती के साथ जयप्रकाश ग्वालियर पहुँचे। सायं 3-30 बजे वह यात्रा पर आगे रवाना हुए। सरकारी अधिकारी, पुलिस-अधिकारी, कार्यकर्ताओं, पत्रकारों और जनता का जलूस साथ चल रहा था। गांव-गांव में इस जलूस का स्वागत हुआ। जगह जगह स्वागत द्वार बनाये गये थे। मुरैना से जौरा आश्रम 14 मील दूर है। जगह-जगह धूल और गड्ढे थे पर जे०पी० का जलूस ग्रामीणों के स्वागत और नारों के बीच आगे बढ़ता रहा। सायं काल 5-30 बजे

यह जलूस पगारा कोठी पहुँचा। पगारा मे एक बैठक का आयोजन किया गया जिसमे समर्पण के कार्यक्रम पर विचार विमर्श हुआ। सब लोगो ने बागियो के साथ रात को भोजन किया। इस सामूहिक भोज का दृश्य अभूतपूर्व था। रात मे बागियो के साथ जयप्रकाश जी की बातचीत हुई। डाकुओ का नेतृत्व मोहरसिंह कर रहा था। मोहरसिंह ने कहा कि हमे कुछ नही कहना है आपके चरणो पर हमने सिर रख दिया है। हम अब यह रास्ता छोड रहे हैं मोहरसिंह का गला भर आया।

13 अप्रैल को प्रात काल माखनसिंह और सरूपसिंह से भी बातचीत हुई। बागियो के साथ उनके परिवार और बाल-बच्चे भी थे। बन्दूको और हथियारो के बीच निहत्थे खडे जे०पी०। खूँखार आखो और अपराधी हाथो की भीड मे अकेला सत।

14 अप्रैल, 1972 को जौरा मे सायकाल गांधी सेवाश्रम मे आयोजित एक सावजनिक सभा मे गांधी जी के चित्र के सामने 82 बागियो ने और 16 अप्रैल, को 81 अन्य बागियो ने आत्मसमपण किया। इनमे सरूपसिंह, पचेमसिंह, तिलकसिंह, नरेशसिंह, मोहरसिंह माधोसिंह, माखनसिंह, जगजीतसिंह, कल्याणसिंह, रूपसिंह, जियालाल, हरिविलास आदि दलो के बागी थे। 17 अप्रैल को ग्वालियर मे नाथूसिंह ने आत्म-समर्पण करते हुए कहा—आज तक पकडने वाले ही मिले या मारने वाले। बचाने वाले तो आप ही मिले। नाथूसिंह ने जयप्रकाश जी को जय का प्रकाश कहा, अहिंसा, प्रेम और सहानुभूति के जय का प्रकाश।

चवल घाटी के 425 बागियो ने हथियार छोडकर भलाई का जीवन जीने का सकल्प लिया। सारी दुनिया इस अचभे को देख रही थी।

चवल के बागियो के आत्म-समर्पण के बारे में 1973 मे जे०पी० ने लिखा —

चम्बल-घाटी के तथा बुन्देलखण्ड के चार-पांच सौ बागियो ने मेरी उपस्थिति मे महात्मा गांधी के चित्र के सामने स्वेच्छा से आत्मसमर्पण कर दिया, यह एक अद्भुत घटना है। यह याद कर मेरा हृदय भर

आता है। कुछ लोग 'चमत्कार' आदि शब्दों से इसका अभिगौरव करते हैं और कहते हैं कि इस चमत्कार में मेरा हाथ है। किन्तु मैं ऐसा नहीं मानता। मैं तो यह मानता हूँ कि इसके पीछे किसी अदृश्य शक्ति ने काम किया है। मैं तो निमित्त मात्र हूँ।

मेरी तो समझ मे नहीं आता कि यह घटना कैसे घटी। मुझे तो इसमें ईश्वर की ही लीला दीखती है। उसी की अगम्य योजना देखता हूँ, जिसके द्वारा उसने इन गुमराह भाइयों को सही राह पर आने की प्रेरणा दी और मैं इस ईश्वरीय चमत्कार का निमित्त बना। इस तरह के काम के लिए मैं अपने को नितान्त अयोग्य पाता हूँ। मैं इसके लिए कोई नैतिक, अथवा आध्यात्मिक गुण का दावा नही करता। इस घटना के पीछे मेरी कोई शक्ति है, मेरा कोई तप है, त्याग है, यह भी मैं नहीं मानता। मै कोई संत या महात्मा नही हूँ। एक छोटा सा सेवक हूँ इस देश का।

यह मैं विनम्रता के कारण नही, वल्कि उस सचाई के आधार पर कह रहा हूँ, जो मैंने जौरा, पगारा और ग्वालियर में महसूस किया। अनुभूति के इन अलौकिक और अद्भुत क्षणो में मुझे इसकी बड़ी तीव्र प्रतीति हुई है कि मेरे निमित्त जो भी यह अदभुत घटित हुआ है, उसे घटाने मे कितने स्तरों पर बहुत कुछ ईश्वर की लीला ने काम किया है। एक आस्तिक के नाते मैं पूरी श्रद्धा से कहता हूँ कि यह सब ईश्वर की ही लीला है। जो कुछ हुआ, वह उसी की कृपा से, उसी की प्रेरणा से हुआ। यह एक असाधारण घटना है, ऐतिहासिक घटना है और शायद भारत के सिवा दुनिया के दूसरे किसी देश में ऐसी घटना सम्भव नही। इस देश की मिट्टी और हवा में ही कोई ऐसी बात है कि यहाँ ऐसी अद्भुत घटनाएँ हो सकती हैं। इसलिए यह सब इस देश की मिट्टी और ईश्वर की कृपा से हुआ है।............

ईश्वर हम सबके हृदय में बैठा है और वह हम सबको प्रेरणा देता है। उसने ही इन बागी भाइयों को प्रेरणा दी। इन लोगों को जो प्रेरणा हुई, उन्हें जो यह एक नया प्रकाश मिला, वह अन्दर से मिला। हम सबको यह विश्वास रखना चाहिए कि हमारे सामाजिक जीवन

मे, राष्ट्रीय जीवन मे ऐसे अवसर आते हैं, जब प्रत्यक्ष ईश्वर हमें प्रेरणा देता है तथा सन्मार्ग पर ले जाता है। इसे मैं अपनी छोटी बुद्धि से समझ नही पाता कि यह घटना किस तरह घटी। जो कुछ हुआ है, वह ईश्वर की लीला ही है। मैं तो इस पूरे काम मे निमित्तमात्र बना हूँ। इससे अधिक इसमें मेरा कोई श्रेय नहीं है।

मैं समझता हूँ कि दुनिया के इतिहास मे इस प्रकार के आत्मसमर्पण की कोई मिसाल नही है। बारह साल पहले 1960 मे विनोबाजी ने जो बीज बोया था, उसी का यह पौधा निकला है। उस समय उन्होने बीस बागियो का हृदय-परिवर्तन किया। वाल्मीकि-युग के बाद विनोबा के सामने हुए इस आत्मसमर्पण को ही स्थान मिलेगा। ऊपर-ऊपर से तो ऐसा लगता था कि काम वही अटक गया था। किन्तु वास्तव मे उस घटना का प्रभाव बराबर अपना काम करता रहा। उन्होने उस समय एक छोटा-सा बीज बोया था, जो तब से अब तक बागियों के, आम लोगो के और अगर मैं गलती नही करता होऊँ तो हुकूमत मे काम कर रहे लोगो के दिलो मे भी, अपना काम करता आ रहा है। इन वर्षों के दरम्यान चम्बल-घाटी शान्तिसमिति ने इस क्षेत्र मे शान्ति और पुनर्वास का जो काम किया तथा आत्मसमर्पण करने वाले सभी बागियो ने जेल से छूटकर साधारण नागरिको जैसा शान्तिमय जीवन शुरू किया, उसके कारण भी एक अनुकूल वातावरण बना। विनोबाजी ने बड़े साहस से प्रेम का एक प्रयोग किया था। चाहे थोड़े समय के लिए ही क्यो न हो, फिर भी विनोबा अमली तौर पर यह साबित कर सके थे कि अपराधो के मामले मे काम करने की एक मानवीय और अधिक सभ्य रीति भी है। इसमे सन्देह नही कि आधुनिक अपराध-शास्त्र और दण्ड-शास्त्र के क्षेत्र मे पश्चिम के देशो ने इस दृष्टिकोण को पूरी तरह अपनाया है।

कोई इन्सान न जन्म से बुरा होता है, न अच्छा होता है। हम सबमे अच्छाई और बुराई हैं। जो साधु हैं, सन्त हैं, उनके अन्दर भी उसका अवशेष बचा है। एक परम परमात्मा ईश्वर है, जो पूर्ण रूप से शुद्ध है, सच्चा है। हम सब तो एक-से ही हैं। हम सबमें अच्छाई भी

और बुराई भी है। जैसा कि विनोबाजी ने कहा, 'हमारे बागी भाई गलत पटरी पर चले गये थे, ईश्वर की कृपा से वे पुनः सही पटरी पर आ गए हैं।'

बच्चों जैसी सरलता, निश्छलता औरप्रेम मैंने प्रायः सभी बागियों में पाया। उनमें से अधिकतर स्नान-संध्या और पूजा-पाठ भी करते हैं। उनसे हम लोगों के द्वारा पूछा गया कि कौन-सा धर्म-ग्रन्थ आपको अच्छा लगता है? तो सबने रामायण की बात कही। आत्मसमर्पण करने वाले हर एक बागी भाई को हमने 'रामायण' तथा विनोबाजी की 'गीता-प्रवचन' की एक-एक प्रति दी है। इन लोगों की भावना तो देखिए! मोहरसिंह एकदम अनपढ़ आदमी हैं। उन्होंने मुझसे कहा है कि "मैं जेल से बाहर आऊँगा, तब आपके द्वारा दी गयी रामायण पढ़कर सुनाऊँगा।"

इन बागियों ने समर्पण करते वक्त समाज से क्षमा-याचना भी की। उन्होंने कहा: "हम चम्बल-घाटी के निवासी, जिनके रास्ते से दुनिया को दु:ख हो रहा था, आज अपने-आपको समाज की सेवा के लिए समर्पित करते हैं। बाबा विनोबा और बाबू जयप्रकाशजी के आशीर्वाद से हम अपनी नयी जिन्दगी शुरू कर रहे हैं। हमसे बहुत-सी गलतियाँ हुई हैं, उनके लिए हमे हार्दिक पश्चाताप है। हमारी वजह से जिनको भी दु:ख तकलीफ हुई है, उनसे हम माफी माँगते हैं। भगवान् से हमारी यही प्रार्थना है कि हमे सच्ची राह पर चलने की ताकत दे और इस जीवन मे समाज के लायक बनाये।"

इन बागियोने क्यों आत्मसमर्पण किया? क्या उन्हें पुलिस का भय था? क्या वे थक गए थे?—उनके निर्णय मे कोई चाहे तो कई इरादे देख सकता है और कई कारण उसके बताए जा सकते हैं। किन्तु मै तो सिर्फ इतना ही कहना चाहता हूँ कि इन बागियों का मानस साधारण अपराधियों का मानस नही है। उनमे से अधिकांश हमारे समाज में व्याप्त सामाजिक अन्याय के शिकार हैं। अन्याय को सहने की शक्ति न होने के कारण एक बार वे हताश होकर या रोष में कुछ कर बैठे। कोई और रास्ता उन्हे नहीं मिला, और बीहड़ की पगडंडी उन्होंने पकड़

ली। उनसे हुई बातचीत से मुझे लगा कि इनमे से कोई भी बागी ऐसा जीवन पसन्द नही करता था। उन्हें तो अपने अपराधी जीवन का प्रायश्चित करना था।

जेल मे जाने के बाद उन्होने मुझे एक पत्र भेजा। उसमे उन्होंने लिखा कि हमारे जो दुश्मन कहलाते हैं, अब हम तो उन्हे दुश्मन मानते ही नही, क्यो कि हमने अपना जीवन-परिवर्तन कर दिया, लेकिन वे आज हमे दुश्मन मानते होगे, तो प्रशासन उन लोगो को ले आये हमारी जेल मे, हम उन्हे गले से लगायेंगे और हम सारी बात दुश्मनी की भूल जायेंगे और उनसे भी भुलाने की प्रार्थना करेंगे।

अब देखिये, कैसा परिवर्तन होता है। इन सबने कुछ यह मानकर आत्म-समर्पण नही किया है कि इन्हें माफी मिल जायगी। इन्हे अच्छी तरह पता है कि वे जेल जायेंगे, इन पर मुकदमे चलेंगे, इन्हे सजाएँ होगी। ये कहते हैं कि हमने जो किया है, उसका फल हम ही भोगेंगे। ये अपना गुनाह कबूल करेंगे, जेल मे अपने अपराधो का प्रायश्चित करेंगे और रिहा होकर समाज-सेवक बनेंगे।

उन्हें दूसरा कोई आश्वासन नही दिया गया है। मात्र अपनी तरफ से मैंने उन्हें इतना आश्वासन दिया है कि अदालत की तरफ से उन्हें फाँसी की सजा होगी, तो बाद मे उन्हें क्षमा किया जायगा और किसी को फाँसी नही दी जायगी। क्योकि समर्पण करने वाले को अन्त मे फाँसी ही मिलने वाली हो, तो वह समर्पण ही क्यो करेगा ? इसलिए मैंने सरकार से आग्रह रखा है कि समर्पण करने वालो को फाँसी की सजा हो तो भी उन्हें माफी मिलनी चाहिए। मैंने बागियो से कहा है कि आपकी जान और अपनी जान मैंने एक तराजू पर रख दी है। फिर भी यदि किसी को फाँसी होगी तो मैं उपवास कर मर जाऊँगा। मुझे विश्वास है कि राज्य के मुख्यमन्त्री, केन्द्रीय गृहमन्त्री और अन्त मे प्रधानमन्त्री मेरे इस आश्वासन की लाज रखेंगी।

सबसे ज्यादा शका मोहरसिंह के बारे मे प्रकट की जा रही थी। उनका दल सबसे बडा था और उन पर इनाम भी सबसे ज्यादा, दो लाख रुपये का था। मध्य-प्रदेश के मुख्यमन्त्री तथा पुलिस अधिकारियो

को विश्वास ही नही था कि मोहरसिंह आत्मसमर्पण करेंगे। किन्तु 14 अप्रैल को सबसे पहले आत्मसमर्पण उन्होंने ही किया। मैंने बहुत पूछा कि उनकी कोई शर्त हो, माँग हो तो बतायें। मोहरसिंह ने भरे गले से यही कहा : "हमारी न कोई माँग है, न कोई शर्त। हमने तो यह सिर आपके चरणों मे रख दिया है।"

इस तरह बिना किसी लिखित पूर्व शर्त के इतनी बड़ी संख्या में इन लोगो ने आत्मसमर्पण किया, यह कोई कम महत्वपूर्ण बात नही है। जिन लोगो ने अपने अन्तर की आवाज से अपना अपराध स्वीकार कर ऐसा क्रान्तिकारी कदम उठाया है, ऐसे लोगों को जेल में बन्द कर समाज या सरकार को क्या लाभ होगा ? मेरी तो ऐसी इच्छा है कि सरकार उन्हें जमीन दे। इसे स्पष्ट रूप से खुली जेल माना जा सकता है। सर्वोदय-कार्यकर्ताओं को भी उनके साथ रखा जाय और वहाँ पुलिस का प्रबन्ध भी रहे। उन्हें उनके बाल-बच्चो के साथ रहने दिया जाय। विकास-योजनाओ मे उनका सहयोग लिया जाय। नेतृत्व का गुण तो उन लोगो के पास है ही। बहुत सुन्दर काम होगा। सरकार से मैंने यह माँग की है।

बहुत दफा यह बात कही जाती है कि सर्वोदयवालों ने डाकुओं को 'हीरो' बना दिया है, 'ग्लेमराइज' किया है। विनोबाजी के सामने 1960 मे हुए समर्पण से लेकर आज तक कुछ लोग इसी दृष्टि से देखा करते है। किन्तु मैं इसका बिलकुल विरोध करता हूँ। मैं यह कहना चाहता हूँ कि हमने उन्हें 'हीरो' नही बनाया है, 'भाई' बनाया है, 'मनुष्य' बनाया है। हाँ, समर्पण के बाद वह हमारे लिए डाकू नही रहे। "आप डाकू हैं, डाकू।" ऐसा कहते रहने से कोई आदमी बनेगा क्या ? इसलिए इसमें हीरो बनाने का सवाल ही नही है। हमने तो उन्हें गले लगाकर भाई बनाया है, मनुष्य बनाया है, गांधी-परिवार में शामिल किया है।

मैंने बागी भाइयों से कहा है; 'हमारा एक छोटा-सा परिवार है—ईश्वर में विश्वास रखने वाले, प्रेम और अहिंसा में विश्वास रखने वाले, गांधी और विनोबा के रास्ते पर चलने वाले लोगों का सर्वोदय-

साथ हमारा व्यवहार बदले, तो अपराध बहुत कम हो सकते हैं। इस दिशा में यदि विचार होगा तो चम्बल घाटी का यह ईश्वरीय कार्य हम सबको तारने वाला सिद्ध होगा। यह तो एक हकीकत है कि इस काम को करने के लिए मध्य प्रदेश पुलिस विभाग को सफलता नहीं मिली। सरकार की तरफ से कई समितियाँ भी बनायी गयी, रिपोर्ट तैयार हुई और उन्हें ताक पर रख दिया गया। अब इस घटना का लाभ लेकर इस बागी-समस्या को इस क्षेत्र से बिल्कुल समाप्त कर देने का प्रयत्न होना चाहिए।

हम सब कहते तो हैं कि ऐसी घटना भारत के सिवा दुनिया में अन्यत्र कहीं नहीं घट सकती। इस पुण्यभूमि की महिमा हम बहुत गाते हैं, तो हम ऐसा क्यों न सोचें कि भारत की पुलिस दुनिया की पुलिस की अपेक्षा कुछ भिन्नरूप में व्यवहार करेगी? जो इगलैण्ड की पुलिस करती है, यहाँ की पुलिस भी वही क्यों करे? अहिंसा का काम, मानस परिवर्तन का, हृदय-परिवर्तन का काम यहाँ की पुलिस क्या नहीं कर सकेगी?

बागी-समस्या की जड़ें बहुत गहरी हैं, इतिहास में हैं, भूगोल में हैं, मनोविज्ञान में हैं, समाज की और राज्यतन्त्र की रचना में हैं, राजनीति में हैं। इस समस्या को सुलझाने का काम अकेले जयप्रकाश या सर्वोदय-वालों की शक्ति के बाहर का है। सारा समाज इस समस्या का अन्त लाना चाहे और उसके लिए ईमानदारी से पूरा प्रयत्न करे, तभी यह हो सकता है। ये डाकू अपने को डाकू नहीं, बागी मानते हैं। और चम्बल-घाटी की आम जनता भी उन्हें इसी रूप में देखती है। सामन्ती समाज-व्यवस्था, दोषपूर्ण भूमि-व्यवस्था; राजस्व और पुलिस के अधिकारियों तथा कर्मचारियों के पक्षपात, धाँधली, भ्रष्टाचार आदि उन्हें डाकू बनाने के लिए जिम्मेदार हैं।

आठ-नौ सौ साल पुरानी इस समस्या का हल न होने में कई निहित स्वार्थ भी जिम्मेदार हैं। निचले स्तर के पुलिस तथा प्रशासन के कर्मचारी, सिद्धान्तहीन राजनीतिज्ञ, शस्त्रों के व्यापारी, करों की चोरी करने वाले जंगलों के ठेकेदार आदि अपने निहित स्वार्थ के लिए

इस समस्या को बनाये रखने मे दिलचस्पी रखते हैं। बागियो को हथियार देने वालो मे पुलिस और सेना के लोग थे। यह समस्या हल हो जाय, तो इन सब लोगो का तो धधा ही बन्द हो जाय।

1960 मे विनोबा जी के सामने हुए आत्मसमर्पण के समय सब लोगो ने मिलकर होहल्ला मचाया। दुनियाभर मे इस घटना का भारी असर हुआ। लेकिन प्रशासन ने कितने ही अर्थहीन विवाद भी खडे किये। उस समय मध्यप्रदेश के बडे पुलिस-अधिकारी रुस्तमजी ने जो बयान दिया था, वह विनोबाजी के उस अद्भुत काम की शान के अनुकूल हरगिज नहीं था। ये रुस्तमजी अभी सीमा सुरक्षा-दल के अधिकारी हैं। इस बार के आत्मसमर्पण के बाद हमारा एक कार्यकर्ता उनसे मिलने दिल्ली गया था। तब रुस्तमजी ने कहा कि इतनी बडी सख्या मे बागियो का आत्मसमर्पण कराकर आप लोगो ने एक बहुत ही सुन्दर काम किया है। रुस्तमजी ने यह भी कहा कि कुछ गलत रिपोर्टों के कारण उस समय मैं गलतफहमी मे पड गया था।

इस बार भी बाद मे वातावरण कुछ कलुषित हुआ था। और आगे का काम ठीक होगा या नही, इस विषय म शका खडी हुई थी। लेकिन अब सब कुछ ठीक हो गया है और आगे का काम अच्छी तरह से होगा, ऐसा लगता है। अब तक राज्य-सरकारो तथा केन्द्र-सरकार का सतत सहयोग इस काम मे मिलता रहा है। और उनकी तरफ से पूरी समझदारी बरती जा रही है। इसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। अभी भी सरकार का और जनता का यदि खुले दिल से पूरा पूरा सहयोग मिलता रहा तो इस क्षेत्र से बागी-समस्या जड से समाप्त की जा सकती है। फिर तो चम्बल घाटी का उद्धार हो सकता है इस क्षेत्र ने बहुत कष्ट उठाये हैं, बहुत तकलीफें भोगी हैं। अब इसका अन्त होना चाहिए। बागियो के आत्मसमर्पण के कारण इस प्रदेश की जनता आज राहत की साँस ले रही है। पहले इस क्षेत्र के लोग साँझ ढलने के बाद बाहर निकलने की हिम्मत नही करते थे। वे अब निर्भय होकर घूम फिर सकते हैं।

किन्तु 400-500 बागियो के आत्मसमर्पण मात्र से इस समस्या का अन्त नही आ जायगा। अभी बहुत-कुछ करना बाकी है। और

आत्मसमर्पण के काम की तरह इसमें भी सरकार तथा सर्वोदय-आन्दोलन का संयुक्त प्रयत्न आवश्यक है। इस क्षेत्र के सामाजिक और आर्थिक विकास की जिम्मेदारी मुख्य रूप से केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों की है। इसमे शान्ति-मिशन और अन्य सेवा-संस्थाएँ सहयोग दे सकती हैं। इसके अतिरिक्त निम्न तात्कालिक काम मुख्य रूप से शान्ति-मिशन द्वारा सरकार की सहायता से करना है :—

1. बाकी बचे बागियों से सम्पर्क स्थापित करना और आत्मसर्पण के लिए उन्हें तैयार करना।

2. जो समर्पण कर चुके हैं, उनके लिए कानूनी कार्यवाही की व्यवस्था करना।

3. जो जेल में हैं, उनके साथ घनिष्ठ सम्पर्क रखकर उनके सुसंस्कारों को मजबूत बनाते रहने का प्रत्यन करना।

4. बागियों के परिवारों तथा उनके द्वारा उजाड़े गए परिवारों के पुनर्वास और राहत की व्यवस्था करना।

5. बागी-परिवारों और उनके दुश्मनों के बीच सामाधान कराकर मैत्रीसम्बन्ध स्थापित कराना।

6. सम्बद्ध गाँवों मे शान्ति और सहकार का वातावरण खड़ा करना।

7. बागियों से रक्षा के लिए चम्बल घाटी के काफी नागरिकों के पास हथियार हैं। ग्वालियर-संभाग मे ऐसी डेढ लाख लाइसेंसवाली बन्दूकें हैं। जिस भावना से बागियों ने अपनी बन्दूकें समर्पित कर दीं, उसी भावना से ये नागरिक भी अपने हथियार समर्पित कर दें, इसके लिए उन्हें समझाना है। ऐसा होगा तो इस क्षेत्र में आपस के झगड़े नहीं बढ़ेंगे और शान्ति का वातावरण बनाये रखने मे भी मदद मिलेगी।

मुझे आशा है कि आत्मसमर्पण की इस घटना की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करने वाले तथा इसमें दैवी प्रेरणा का अनुभव करने वाले सब लोगो का पूरा-पूरा सहयोग इस काम में मिलेगा।

प्रभावती नहीं रहीं : अकेले जे० पी०

मुसहरी और चम्बल घाटी मे यात्रा के दौरान प्रभावती अस्वस्थ

थी लेकिन वह जयप्रकाश जी के कार्यक्रमो को सफल बनाने मे लगी हो। उन्होने अपने स्वास्थ्य की चिन्ता नही की। अक्टूबर 1972 मे वाराणसी के मेडिकल कालेज म जाच से पता चला कि प्रभावती को कैंसर है।

प्रभावती अपने रोग के बारे मे अभी तक छिपाती रही थी जिससे जे० पी० को कष्ट न हो। उनकी देश सेवा के कार्यक्रमो मे बाधा न पडे लेकिन जब जे० पी० को पता चला तो वे हक्के बक्के रह गये। रोग भी ऐसा जो बिना प्राण लिए नही जाता। 27 नवम्बर को बम्बई के टाटा अस्पताल मे प्रभावती को भर्ती कराया गया। 4 दिसम्बर को उनका आपरेशन किया गया। जनवरी 73 म वह पूण स्वस्थ्य होने पर कलकत्ता मे अपने भाई शिवनाथ प्रसाद के यहाँ रहने लगी, ताकि पूर्ण विश्राम मिल सके। लेकिन कलकत्ता मे रोग पुन भडक उठा। उलटियाँ होने लगी। बम्बई से डाक्टर पेमास्टर को बुलाया गया। जे० पी० से प्रभावती का दुख देखा न ही जा रहा था। फरवरी मे प्रभावती को पटना लाया गया लेकिन उनकी हालत मे सुधार नही हुआ। बम्बई के टाटा अस्पताल के डाक्टरो को दिखाया लेकिन अब कुछ नही हो सकता था। डाक्टर विवश थे। वे प्रभावती के प्राण नही बचा सकते थे। मार्च म जे० पी० उन्हे लेकर पुन पटना गए। प्रभावती के भतीजे अनिल का विवाह था। बीमारी मे भी वह विवाह के कार्य मे व्यस्त थी।

प्रभावती का कष्ट बढता ही जा रहा था। जीने की कोई आशा नही थी। उनके कष्ट से जयप्रकाश जी को दुख न पहुँचे इसलिए उन्होने दूसरे कमरे मे अपना बिस्तर लगवाया। ताकि पति को उनके कष्ट को दखकर दुख न हो। कराह सुनकर जे० पी० आते तो मुस्कराने लगती। जब अधिक तकलीफ होती तो जे० पी० के कमरे का दरवाजा बन्द करवा दती।

15 अप्रैल, 1973 को प्रभावती ने इस नश्वर ससार को छोड दिया। उस दिन सुबह से ही उनकी हालत बिगड रही थी। अनिल के विवाह में विघ्न न पडे इसलिए तिलक की रस्म हडबडी मे पूरी की गई। जे० पी० मृत्यु की ओर बढती प्रभावती के पास बैठे थे। प्रभावती का

मँहगाई से त्राहि-त्राहि कर रही थी। देश के प्रमुख उद्योग बिहार मे हैं फिर भी लोग वहाँ भूखे मर रहे थे। बार-बार-अकाल पडते थे। कोई सुनने वाला नही था। अधिकारी कर्मचारी और मन्त्रिगण भ्रष्टाचार मे लिप्त थे। देश मे प्रति व्यक्ति वार्षिक आय 282 रु० थी। बिहार मे यह केवल 235 रु० वार्षिक थी। तीन चौथाई किसानो के पास पाच एकड से भी कम भूमि थी। एक चौथाई के पास केवल दो तिहाई। देश भर के 15 प्रतिशत भूमिहीन बिहार मे थे। निर्धनता से मुक्ति का कोई मार्ग नजर नही आ रहा था। इन्ही सब कारणो से विवश होकर गुजरात मे युवाशक्ति ने आन्दोलन किया और राज्य की सरकार उलट कर रख दी। गुजरात के इस उदाहरण से बिहार की युवा शक्ति मे नये रक्त का सचार हुआ और वहाँ मँहगाई, भ्रष्टाचार, रिश्वत, गरीबी और अनाचार के विरुद्ध जन आन्दोलन शुरू हो गया।

छात्रो ने जयप्रकाश जी से अनुरोध किया कि वे युवाशक्ति का नेतृत्व करें और आन्दोलन को शक्तिशाली बनायें। राज्य भर मे आन्दोलन शुरू हुआ, प्रदर्शन हुए, जुलूस निकाले गए। सरकार ने समस्या की जडो पर आघात करने के बजाय दमन का रास्ता अपनाया। जगह-जगह गोली चलायी गई। पुलिस को दमन की छूट दे दी गई। युवा नेता जेलो मे ठूँसे जाने लगे। सरकारी आतक से आन्दोलन और तीव्र हो गया। पटना, राँची, मुँगेर, बिहारशरीफ, राजमहल, रामगढवा, बेतिया, बैरगनिया, टेकारी, छपरा, राघेपुरा, जनुई, देवघर, खगडिया, हिलसा और कौवकोल आदि 18 स्थानो पर गोली चलायी गयी। पटना मे 18 बार पुलिस ने निहत्थी भीड पर गोली चलायी। सरकारी सूत्रो का कहना है कि 27 व्यक्ति मरे और 223 घायल हुए जबकि वास्तव मे मृतको और घायलो की सख्या कही अधिक थी।

अब आन्दोलन का नेतृत्व जयप्रकाश जी ने ले लिया। 8 अप्रैल को आठ मील तक मौन जलूस निकाला गया। उस समय जयप्रकाश जी की आयु 72 वर्ष थी। स्वास्थ्य ठीक नही था। बेलोर मे उनका 'प्रोस्टेट' आपरेशन किया गया। मई के अन्त मे पुन. बिहार लौट आए।

5 जून को पटना के गांधी मैदान मे विशाल प्रदर्शन का आयोजन

सिर सरस्वती बहन की गोद में था। अन्तिम शब्द थे "बापू" "बा"

जे० पी० संसार में अब अकेले थे। करोड़ों करोड़ों जन के नेता अब बिल्कुल अकेले थे। उन्होंने कमरे से सबको बाहर भेज दिया और शव के पास अकेले रह गए। वह बच्चों की तरह रो रहे थे।

बहुत कम लोग ही इस बात को जानते हैं। विवाह के कुछ समय बाद ही वह अमेरिका चले गए थे। नव विवाहित पति पत्नी कुछ दिन भी साथ नही रह सके। और जब अमरीका में अपनी शिक्षा दीक्षा समाप्त करके जे० पी० भारत लौटे तो बापू के आश्रम में प्रभावती ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर चुकी थी। उनका समस्त जीवन सेवा और समाज के कार्यों मे लगा रहा। परम्परागत अर्थों में गृहस्थी का सुख उन्होने कभी नही देखा, लेकिन पूरा सर्वोदय आश्रम उनका परिवार था। हजारों कार्यकर्त्ता और भारत के जन-जन उनके परिवार के जन थे। और जे० पी० वह तो मानो अपने आपको प्रभा जी के सानिध्य में अपने आपको बालक की तरह सुरक्षित समझते थे। वह गोद अब चली गई थी। जे० पी० का अकेले अनुभव करना कितना सत्य था।

सम्पूर्ण क्रान्ति

1974 के फरवरी माह में दिल्ली मे जयप्रकाश जी से गुजरात के सर्वोदयी कार्यकर्त्ता मिले। गुजरात के दौरे के बाद वे बिहार गए। 18 मार्च को पटना मे बड़े स्तर पर हिंसक घटनाएँ हुई जिससे उनका हृदय दुखी हो गया। 19 मार्च को उन्होने मौन रखा। उन्होने कहा कि 18 मार्च को पटना में प्रशासन बिल्कुल बुरी तरह विफल हुआ। उसके बाद किसी प्रजातांत्रिक देश में सरकार स्तीफा दे देती। लेकिन इस देश मे हम अपनी गलतियों को छिपाने, बहाने बनाने और बलि के बकरे ढूँढने मे बहुत माहिर हो गए हैं। अब समय है कि हम अपनी दशा सुधार लें। तीन मार्च को जे० पी० ने कहा कि बिहार सरकार को मेरी ईमानदार सलाह है कि वह छात्रों और लोगों से शान्तिपूर्ण विरोध और कार्यवाही का उनका अधिकार न छीने। सरकार ने 21 मार्च को मौन जुलूस निकालने की अनुमति नही दी। अनेक लोग गिरफ्तार कर लिए गये।

बिहार में भ्रष्टाचार और गरीबी का बोलबाला था। जनता

मँहगाई से त्राहि-त्राहि कर रही थी। देश के प्रमुख उद्योग बिहार मे हैं फिर भी लोग वहाँ भूखे मर रहे थे। बार-बार-अकाल पडते थे। कोई सुनने वाला नही था। अधिकारी कर्मचारी और मंत्रिगण भ्रष्टाचार मे लिप्त थे। देश मे प्रति व्यक्ति वार्षिक आय 282 रु० थी। बिहार मे यह केवल 235 रु० वार्षिक थी। तीन चौथाई किसानो के पास पाच एकड से भी कम भूमि थी। एक चौथाई के पास केवल दो तिहाई। देश भर के 15 प्रतिशत भूमिहीन बिहार मे थे। निर्धनता से मुक्ति का कोई मार्ग नजर नही आ रहा था। इन्ही सब कारणो से विवश होकर गुजरात मे युवाशक्ति ने आन्दोलन किया और राज्य की सरकार उलट कर रख दी। गुजरात के इस उदाहरण से बिहार की युवा शक्ति मे नये रक्त का सचार हुआ और वहाँ मँहगाई, भ्रष्टाचार, रिश्वत, गरीबी और अनाचार के विरुद्ध जन आन्दोलन शुरू हो गया।

छात्रो ने जयप्रकाश जी से अनुरोध किया कि वे युवाशक्ति का नेतृत्व करें और आन्दोलन को शक्तिशाली बनायें। राज्य भर मे आन्दोलन शुरू हुआ, प्रदर्शन हुए, जुलूस निकाले गए। सरकार ने समस्या की जडो पर आघात करने के बजाय दमन का रास्ता अपनाया। जगह-जगह गोली चलायी गई। पुलिस को दमन की छूट दे दी गई। युवा नेता जेलों मे ठूँसे जाने लगे। सरकारी आतक से आन्दोलन और तीव्र हो गया। पटना, राँची, मुँगेर, बिहारशरीफ, राजमहल, रामगढवा, बेतिया, बैरगनिया, टेकारी, छपरा, राघेपुरा, जनुई, देवघर, खगडिया, हिलसा और कौवकौल आदि 18 स्थानो पर गोली चलायी गयी। पटना मे 18 बार पुलिस ने निहत्थी भीड पर गोली चलायी। सरकारी सूत्रो का कहना है कि 27 व्यक्ति मरे और 223 घायल हुए जबकि वास्तव में मृतको और घायलो की सख्या कही अधिक थी।

अब आन्दोलन का नेतृत्व जयप्रकाश जी ने ले लिया। 8 अप्रैल को आठ मील तक मौन जलूस निकाला गया। उस समय जयप्रकाश जी की आयु 72 वर्ष थी। स्वास्थ्य ठीक नही था। वेलोर मे उनका 'प्रोस्टेट' आपरेशन किया गया। मई के अन्त मे पुन बिहार लौट आए।

5 जुन को पटना के गाँधी मैदान मे विशाल प्रदर्शन का आयोजन

किया गया। सरकारी दमन चक्र के विरुद्ध सारी जनवादी शक्तियाँ जयप्रकाशजी के नेतृत्व में संगठित होने लगी। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी प्रचार कर रही थी कि जयप्रकाश अमरीकी एजेन्ट हैं, यह आन्दोलन प्रतिक्रियावादी है, इसके पीछे अमरीकी गुप्तचर संगठन सी० आई० ए० का हाथ है, जो श्रीमती इन्दिरा गांधी की सरकार को उखाड़ना चाहती है। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के अनुसार जनसंघ, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ और अन्य सारे दक्षिणपंथी दल जयप्रकाश के नेतृत्व मे फासीवाद का प्रचार कर रहे थे ताकि श्रीमती गांधी की जनतांत्रिक सरकार टूट जाय। 5 जून के प्रदर्शन में लाखों की भीड़ थी, यहाँ जे० पी० ने सम्पूर्ण क्रान्ति का आह्वान किया। वे ढाई घण्टे तक बोलते रहे—"हमें सम्पूर्ण क्रान्ति चाहिए इससे कम नहीं।"

मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी, सोशलिस्ट पार्टी और भारतीय क्रान्ति दल आदि अनेक विरोधी दलों ने जयप्रकाश जी के आन्दोलन का समर्थन किया। हिन्दी के प्रख्यात आंचलिक कहानीकार और उपन्यास कार फणीश्वर नाथ रेणु जयप्रकाश जी के साथ थे। प्रसिद्ध जनवादी कवि रेणु, नागार्जुन भी जे०पी० के आन्दोलन मे थे। रेणु और नागार्जुन की अपीलों पर अनेक साहित्यकार और बुद्धिजीवी जयप्रकाश जी के साथ हो गए। नागार्जुन और रेणु दोनों को गिरफ्तार किया गया।

जगह-जगह छात्र संघर्ष समितियों का गठन किया गया। बिहार के कोने-कोने में आन्दोलन भड़क उठा।

सम्पूर्ण क्रान्ति के लिये कार्यक्रम था—विधान सभा भंग करना, सरकारी काम बन्द करना, लगान और कर नहीं देना, कालेज और विश्वविद्यालय एक साल तक बन्द रखना, नैतिक मूल्यों की स्थापना गरीबी और कमजोर वर्गों की समस्याओ को प्राथमिकता देना, जनशक्ति को संगठित करना।

जून के अन्त मे इलाहाबाद में जनसभा थी कि वर्षा होने लगी। लोग भीगते हुए भी बैठे रहे। जे० पी० भी भीगते रहे। उन्होंने कहा कि मुझे तो काफी पहले से लग रहा है कि देश के क्षितिज पर सन 42 आ रहा है। एक क्रान्तिकारी परिस्थिति बन रही है।

3 अक्तूबर से 5 अक्तूबर तक बिहार बन्द का आयोजन किया गया जिसकी सफलता से सरकार तिलमिला गई। इंदिरा सरकार ने अब आन्दोलन को कुचलने के लिये ब्रिटिश साम्राज्यवाद को भी पीछे छोड़ दिया। बिहार बन्द पूर्णतया शान्तिमय रहा। सारे कार्यालय और विद्यालय बन्द थे। राज्य भर में कामकाज ठप्प हो गया। परिवहन के सब साधन बन्द थे। जनता का सहयोग और जनजन की एकता के सामने अत्याचारी शासन दहलने लगे। रेलों का चलना भी बन्द था। जनता की मांग थी मन्त्रिमंडल भंग किया जाय विधानसभा भंग की जाय।

जे० पी० ने मांग की कि जनता ने विधानसभा में जन प्रतिनिधियों को चुनकर भेजा है। वह उन्हें वापस भी बुला सकती है इसलिए विधानसभा भंग की जाए।

लेकिन सरकार का कहना था कि विधानसभा में जनता ने प्रतिनिधियों को चुनकर भेजा है इसलिए उसे भंग करना गैरकानूनी और असंवैधानिक है। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी इंदिरा सरकार के हर कदम का समर्थन कर रही थी। बिहार में जे० पी० के आन्दोलन का विरोध करने के लिए भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने जुलूस निकाले और प्रदर्शन किए। लेकिन जनता के उत्साह और आन्दोलन की आग शांत नहीं हुई। सरकारी दमन का चक्र बढ़ता गया।

बिहार में विधान सभा के चुनाव 1972 में हुए थे। बहुमत कांग्रेस को मिला था। तब से राज्य सरकार प्रतिदिन नये अध्यादेश जारी करके राज्य चला रही थी। 1973 में बिहार सरकार ने 126 अध्यादेश जारी किए। 1974 में 180 अध्यादेश जारी किए गये।

25 अक्तूबर 1974 को बिहार के राज्यपाल श्री आर० डी० भंडारे ने बम्बई में कहा था— बिहार की वर्तमान हालत के बारे में एक वर्ष पूर्व मैंने भविष्यवाणी की थी और चेतावनी दी थी। तब बिहार के जनजीवन से भ्रष्टाचार दूर करने के लिए मैंने कुछ सुझाव दिए थे परन्तु उन पर आपत्ति की गई और कहा गया कि राज्यपाल को ऐसी बातें नहीं कहनी चाहिए। लेकिन तब जो कुछ मैंने कहा वह अब सब सच

हो रहा है।"

वर्धा में 9 से 11 जुलाई तक सर्व सेवा संघ की बैठक हुई उसमें आन्दोलन पर लगाये गए आरोपों पर विचार किया गया। आन्दोलन पर आरोप था—इससे अराजकता, अनुशासनहीनता और हिंसा को बढ़ावा मिलेगा। असामाजिक तत्वों और प्रतिक्रियावादी शक्तियों को बढ़ावा मिलेगा। फासीवादी तत्वों को प्रोत्साहन मिलेगा और कानून की अवहेलना होगी। इस आन्दोलन के पीछे कोई आदर्श या सिद्धान्त नही है। सर्वोदय कार्यकर्त्ताओ ने इन सारे आरोपो पर विचार विनिमय किया। इसी सम्मेलन मे क्रिकेट के खिलाड़ी और आन्दोलन के कर्मठ युवा कार्यकर्ता कुमार प्रशान्त ने भाषण किया जिसकी बेहद चर्चा हुई।

ब्रह्म विद्या मन्दिर मे विनोबा जी कोइस सम्मेलन की सूचना दी गयी जिसमे कार्यकर्त्ताओ मे मतभेद बहुत बढ़ गये थे। जयप्रकाश जी भी विनोबा जी के पास ठहरे हुए थे। सर्वोदय में फूट पड़ने के लक्षण नजर आ रहे थे। समाचार पत्रो मे प्रतिदिन एक दूसरे के विपरीत समाचार आ रहे थे। विनोबा जी ने कहा—"इसमें परेशानी की क्या बात है जो बिहार जाकर नया काम करना चाहते हैं वे खुशी से जाएँ और मन लगाकर काम करें। जो नही जाना चाहते और पुराना काम करना चाहते हैं वे वही करें। जो अनुभव आये उसके आधार पर चार माह बाद पुन. मिलें और आगे की योजना बनायें। सत्य, अहिंसा, और संयम से कामकरो।

"धर्मक्षेत्रे पटनाक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
जयका गफूराश्चैव किमकुर्वत संजय।"

सन् 1942 की तरह 1974 भी जयप्रकाश जी के जीवन का महत्वपूर्ण वर्ष हो गया। केवल उनके ही जीवन में नही बल्कि भारत के इतिहास में ये दोनों वर्ष अमर रहेंगे। 1974 मे जे० पी० ने सम्पूर्ण क्रान्ति का आह्वान किया। वाराणसी के छात्रों की एक सभा में उन्होंने कहा कि छात्र और युवजन एक होकर वर्तमान प्रजातान्त्रिक संस्थाओं और प्रक्रियाओं की रक्षा करें। छात्र और युवजन गांधी के

ग्राम राज के रूप से या सामुदायिक स्वशासन के आधार पर लोक प्रजातन्त्र का विकल्प खडा करने मे लगें जिससे सरकार चलाने की प्रक्रियाओ मे अधिक से अधिक लोगो की भागीदारी हो सके। ये सब क्रान्तिकारी लेकिन रचनात्मक कार्य हैं और इनके लिए स्वाधीनता-पूर्वक की गयी अनुशासित तैयारी की जरूरत है। इनम सीधी कार्यवाही भी जरूरी हो सकती, लेकिन एक बेहतर और सम्पूर्ण प्रजातन्त्र के लिए की गई कार्यवाही का हिंसा से कोई सम्बन्ध नही हो सकता। लखनऊ मे उन्होन छात्रो और नौजवानो से कहा—जब नैतिकता ही नही रहेगी तो लोकतन्त्र की स्थिति क्या होगी? यह सब के लिए चुनौती है।

4 नवम्बर को पटना मे विशाल प्रदशन हुआ। जे० पी० ने उसमे भाग लिया। सरकार का दमन चक्र तैयार था। जे० पी० पर भी पुलिस ने लाठी चलायी। वह घायल होकर बेहोश हो गये। सारे देश मे इस घटना की निन्दा हुई, लेकिन सरकार के कान पर जूं नही रेंगी।

5 जून, 1974 को पटना म ऐतिहासिक प्रदशन के बाद जन सभा हुई जिसमश्री फणीश्वरनाथरेणु ने राष्ट्र कवि श्री रामधारीसिंह दिनकर की वह कविता पढकर सुनाई, जो दिनकर जी ने 1946 मे इसी मैदान में जे० पी० के स्वागत म सुनाई थी। सम्पूर्ण क्रांति का आह्वान करते हुए जे० पी० ने क्रान्ति का विशुद्ध विश्लेषण किया (दर्शन दिया)। उसका अपना भारी महत्व है अत उसे अविकल यहाँ दे रहे हैं

अभी अभी रेणुजी ने जो कविता पढी, अनुरोध तो वास्तव मे उनका था, सुनाना तो वह चाहते थे। मुझसे पूछा गया कि वह कविता सुना दें या नही। मैंने स्वीकार किया। लेकिन उसने बहुत सारी स्मृतियो और अभी हाल की बहुत दुखद स्मृतियो को जागृत कर दिया है। इससे हृदय भर उठा है। आपको शायद मालूम न होगा कि जब मैं वेल्लोर अस्पताल के लिए रवाना हुआ था, तो जाते समय मद्रास म दो दिन अपने मित्र श्री ईश्वर अय्यर के साथ रुका था। वहाँ दिनकर जी, गगाबाबू मिलने आये थे। बल्कि गगाबाबू तो साथ ही रहते थे। और दिनकर जी बडे प्रसन्न दीखे। उन्होंने अभी हाल की अपनी कुछ कविताएँ सुनायी और मुझसे कहा कि आपने जो आन्दोलन

शुरू किया है, जितनी मेरी आशाएँ आपसे लगी थीं, उन सब की पूर्ति आपके इस आन्दोलन में, इस नये आह्वान में, देश के तरुणों का आपने जो किया है, मैं देखता हूँ।

अब मेरे मुंह से आप हुंकार नहीं सुनेंगे। लेकिन जो कुछ विचार मैं आपसे कहूँगा वे विचार हुंकारों से भरे होंगे। क्रान्तिकारी वे विचार होंगे जिन पर अमल करना आसान नहीं होगा। अमल करने के लिए बलिदान करना होगा, कष्ट सहना होगा, गोली और लाठियों का सामना करना होगा, जेलों को भरना होगा, जमीनों की कुर्कियाँ होंगी। यह सब होगा। यह क्रान्ति है मित्रो और सम्पूर्ण क्रान्ति है। यह कोई विधानसभा के विघटन का ही आन्दोलन नहीं है। यह तो एक मंजिल है जो रास्ते में है। दूर जाना है, दूर जाना है। जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में—अभी न जाने कितने मीलों इस देश की जनता को जाना है, उस स्वराज्य को प्राप्त करने के लिए जिसके लिए देश के हजारों लाखों जवानों ने कुर्बानियाँ की हैं।

मैं इस आन्दोलन को सम्पूर्ण क्रान्ति के रूप में देखता हूँ। समाज में आमूल परिवर्तन हो; सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, नैतिक परिवर्तन। एक नया समाज इसमें से निकले, जो समाज आज के समाज से बिलकुल भिन्न हो, उसमें कम-से-कम बुराइयाँ हों। हम ऐसा भारत चाहते हैं, जिसमें सब सुखी हों और अमीर-गरीब का जो आकाश-पाताल का भेद है वह न रहे। जो शोषण है वह न रहे, या कम-से-कम हो। समाज की बुराइयाँ दूर हों, इन्साफ हो। जो आर्थिक परिवर्तन हो उसका फल यह हो कि जो सबसे नीचे के लोग हैं, जो सबसे गरीब हैं, चाहे वे खेतिहर मजदूर हों, भूमिहीन हों—मुसलमान हरिजन, आदिवासी, ये जो सबसे नीचे हैं, इनको पहले उठाना चाहिए। 27 वर्षों में जो कुछ हुआ वह उल्टा हुआ। गरीबी बढ़ती गयी और अमीरी भी, और दोनों का फर्क भी बढ़ता गया। भूमि-सुधार के कानून भी पास हुए, परन्तु भूमिहीनता बढ़ती ही गयी, घटी नहीं। पहले जितने प्रतिशत में भूमिहीन थे उससे आज अधिक हैं।

यह क्रान्ति जो आरम्भ हुई है, अगर सफल होती है तो यह सब उसमे से निकलेगा। समाज की बुराइयाँ, छुआछूत, जात-पाँत के झगडे, साम्प्रदायिक झगडे, सब समाप्त होने चाहिए। हम सब हिन्दुस्तानी हैं, हम इन्सान है, यह विचार फैलना चाहिए। सबके दिल मे इसकी जगह होनी चाहिए। हमारे कार्य मे, हमारे जीवन मे यह प्रत्यक्ष होना चाहिए, केवल जुबान पर नही, जैसा आज हो रहा है। और इसी तरह चूँकि इसमे छात्र है मैंने इनसे अक्सर कहा है कि हिन्दू-समाज मे, मुस्लिम-समाज मे भी शायद किसी रूप मे हो, जो यह तिलक-दहेज की प्रथा है अगर यह आन्दोलन सफल हुआ तो यह चलना भी बन्द होगा। इस तरह मैं दूर तक देखता हूँ, जो सर्वोदय की मजिल है, जो समाजवाद की मजिल है—सब एक तरह की बात करते हैं, तरीके, रास्ते अलग-अलग हैं और हो सकते हैं। मै इस आन्दोलन को वहाँ ले जाना चाहता हूँ। यह क्रान्ति है मित्रो, सम्पूर्ण क्रान्ति है।

यह जो क्रान्ति है उसके उद्देश्य तभी पूरे होगे, जब समाज मे सम्पूर्ण क्रान्ति होगी। सम्पूर्ण क्रान्ति का मतलब है समाज का परिवर्तन हो। समाज की कुरीतियो का भी परिवर्तन हो। तिलक-दहेज की प्रथा भी खत्म हो।

यहाँ बैठे आप लोग कहेगे, हमको बेटी की शादी करनी है। लडका वाला तिलक माँगता है। अगर अपने बेटो से लिए तिलक नही लेंगे तो हम कहाँ से देंगे? तो सब बेटे वाले और बेटी वाले समझ जाएँ कि क्रांति सफलता होती है तो आपके लडके बैल नही हैं, घोडे नही हैं, जो बाजार मे आपको बेचना है। यह अत्यन्त निन्दनीय है। वह भारतीय सस्कृति हमारे यहाँ थी, जिसमे सीता ने वरमाला पहनायी थी रामचन्द्र को, लडकी अपना वर स्वय जहाँ चुनती थी, वहाँ आज लडके के पिता के पास लडकी वाले जाते हैं। तो लडके के पिता कहते हैं कि जरा लडके को समझा लीजिये, मैं तो राजी हूँ। और लडके के पास गये तो वे यह नही पूछते हैं कि लडकी कैसी है, कहाँ तक पढी है। कहते हैं कि साहब, हमको तो 'फारेन' भेज दीजिये, हमको एम्बेसडर गाड़ी दे दीजिये। अब इन लडकों से पूछो, अभागों से, कि मोटर साइकिल से शादी करोगे कि

एम्बेसडर से ? तुमको बीबी चुननी है कि साइकिल चुननी है। इतना पतन हुआ है समाज का कि कुछ ठिकाना नहीं। मैं तो आगे जाकर कहूँगा कि जातिपाँति का भेद मिटाओ। विजातीय ब्याह करो। सजातीय हो, गोत्र हो, यह हो, वह हो—नाना प्रकार का ढकोसला रख लिया है, जो हिन्दू-समाज में कभी था नहीं।

सम्पूर्ण क्रान्ति का यह सामाजिक पहलू पहले हमारे यहाँ रह चुका है। हमारे देश मे जब अंग्रेजी राज्य अपना कदम जमा रहा था उस समय यह प्रथा नही थी। उस समय के अंग्रेजी के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर आदि ने चिट्ठियाँ लिखी हैं ईस्ट इंडिया कम्पनी को, जिनमें लिखा है कि यहाँ तो कोई दहेज की प्रथा नहीं। इसका मतलब यह कि बीमारी हाल मे पैदा हुई है। गुलामी के साथ-साथ ये बीमारियाँ पैदा हुईं। जब हमारे समाज मे जीवन था, शक्ति थी, तब हम दूसरों को हजम कर सकते थे। आक्रमणकारियों को, उन की संस्कृतियों को हजम कर लेते थे। आत्मसात् करके भारतीय बना लेते थे उनको। सौ बरस के बाद पता नहीं चलता था कि किधर से आये हैं। भारतीय हो गये। उनकी संस्कृति हमने लेली। जो अच्छा था वह ले लिया, बुरा छोड़ दिया। ऐसा नहीं कि हमारी संस्कृति में उस समय सब अच्छा ही था। कुछ बुरा भी था।

तो सम्पूर्ण क्रांति में सारे समाज का परिवर्तन होगा। ऊँच-नीच का भेद मिटना चाहिए। जो हरिजन हैं वह भी इन्सान हैं। जिसकी सृष्टि हम हैं उसी भगवान् ने उनकी सृष्टि की है। हम ऊँचे है, वह अस्पृश्य है? वह नीचा है? उसको पाखाना साफ करने को कहेंगे? तानाशाही हो अगर इन हरिजनो की, तो क्या नियम बनायेंगे ये लोग? ये ब्राह्मण, क्षत्रिय, भूमिहार, कायस्थ, लाला, ये बनिया सब लोग हमारे पाखाने साफ करें चूंकि आपका राज है, उनको दबाके रख दिया है।

'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्म विभागश':—यह भगवान ने कहा था। चातुर्वर्ण की सृष्टि हमने की गुण, कर्म का विभाग देख करके। पंडितजी पंडित बने हुए हैं तथा गुण और कर्म उनके चमार के हैं, और

फिर भी पूज्य होना चाहेंगे। चाडाल के गुण हैं, पर होना चाहेंगे वही। एक नम्बर के दुराचारी, व्यभिचारी पडित-सबको नही कह रहा हूँ— कितने ऐसे मिलेंगे आपको अन्यायी, लाभी। लेकिन ब्राह्मण कुल मे पैदा हुआ इसलिए 'गोड लागी बाबाजी, गोड लागी पडिनजी।' चरण-स्पर्श होगा। तो कौन-सा गुण, धर्म ब्राह्मण का है उनमे ?

आज मैं देख रहा हूँ बिहार मे सघर्ष के चलते नारी-शक्ति पैदा हो रही है। अब आप सोचियेगा। ये सारे सुधार क्या क्राति नही ? हम चाहते हैं कि जीवन हमारा बदल जाय फिर बिहार उस जगह पहुँच जाय, जिस जगह सम्राट् अशोक के जमाने मे था।

यह सघर्ष मिनिस्ट्री के इस्तीफे के लिए और विधानसभा के विघटन के लिए नही है, यह तो सम्पूर्ण क्राति के लिए सघर्ष है। सम्पूर्ण क्राति सारे जीवन की क्राति है। उस तरह हमे कदम बढाना है।

समाज बदलना है मित्रो। समाज के एक अग को बदल दीजिये और बाकी ज्यो का त्यो सडा-गला समाज लेकर फिर आगे बढे ऐसा होने वाला नहीं है। वह अग भी सड जायेगा। इसलिए सारे समाज के कलेवर को बदलना है, उसकी आत्मा को बदलना है।

इन विचारो पर अमल करना आसान नही होगा। अमल करने के लिये बलिदान करना होगा, कष्ट सहना होगा, गोली और लाठियो का सामना करना होगा, जेलो को भरना होगा, जमीनो की कुर्कियाँ होगी, यह सब होगा। यह क्राति है मित्रो, और सम्पूर्ण क्राति है। विधानसभा का विघटन तो एक मजिल है, जो रास्ते मे है। दूर जाना है, दूर जाना है। जवाहरलाल नेहरू के शब्दो मे अभी न जाने कितने मीलो इस देश की जनता को जाना है, उस स्वराज्य को प्राप्त करने के लिए, जिसके लिए देश के हजारो लाखो जवानो ने कुर्बानियाँ दी है, जिसके लिए सरदार भगतसिह, उनके साथी, बगाल के सारे क्रातिकारी साथी, महाराष्ट्र के साथी, देशभर के क्रातिकारी साथी गोली के निशाना बने, या तो फाँसियो पर लटकाये गये, जिस स्वराज्य के लिए देश की लाखो-लाख जनता बार-बार जेलो को भरती रही है।

इस बात को ध्यान मे रखना है कि यह सघर्ष केवल सीमित

उद्देश्यों के लिए नहीं हो रहा है। इसके उद्देश्य तो बहुत दूरगामी हैं : *भारतीय लोकतन्त्र को वास्तविक तथा सुदृढ़ बनाना, जनता का सच्चा* राज कायम करना, समाज के अन्याय, शोषण आदि का अन्त करना, एक नैतिक, सांस्कृतिक तथा शैक्षणिक क्रांति करना तथा नया बिहार बनाना और अन्ततोगत्वा नया भारत बनाना है इसके आप अगुआ हैं। *यह बड़ा कठिन है, परन्तु आपकी सफलता निश्चित है, क्योंकि यह* युगधर्म की पुकार है।

हमारा आन्दोलन सम्पूर्ण क्रान्ति के लिए है, जिसमें व्यवस्था भी बदलेगी और व्यक्ति भी, और मैं मानता हूँ कि इनमें कोई आगे-पीछे *नहीं, साथ-साथ होगा। व्यक्ति समूह के लिए जिये और समूह व्यक्ति* के लिए, यह एक दिन मे नही होगा, कोई भी क्रान्ति एक दिन में नहीं होती है इसलिए हमारी क्रान्ति आरोहण की एक प्रक्रिया होगी। पश्चिमी लोकतन्त्र के कठघरे से निकलकर कुछ नया सोचें।

उस दिन जब मैं अस्पताल आया था तो एक भाई, जो देहात के थे, मुझसे कहने लगे कि आपने हमको कहा था कि शान्ति रखो, शांति रखो तो हमने शान्ति रखी। अब हम लोग क्या करें ? यदि ये लोग अपनी बन्दूकें रख देते तो हम इनके साथ निपट लेते। हम निहत्थे और वे भी *निहत्थे। देखते कि क्या होता है उस लड़ाई में। या हमको वे बन्दूक दे* देते तो दस को मारकर हम मरते। 'खून का बदला खून से लेंगे' यह भी सुना हमने। इस बारे मे मै आपसे कहना चाहता हूँ कि ठीक है, कुछ हिंसा हो सकती है। आज सी० आर० पी० और बी० एस० एफ० *मिलाकर शायद एक लाख बिहार में हैं, बिहार सैनिक पुलिस को छोड़* करके। उसके बाद दानापुर में आर्मी बैठी हुई है। हिंसा की लड़ाई हो तो कौन जीतेगा आप बता दीजिए ? आपके पास कितनी बन्दूकें मिलेंगी, कितनी लाठियां मिलेंगी ? और कितनी पिस्तौल और कितने बम मिलेंगे ? अक्ल से काम लीजिए।

आप कहियेगा, यह शान्ति-शान्ति की बात गांधी वालों का खब्त है। मित्रो गांधीवालों का खब्त नही है। यह युद्ध-नीति है आपकी। *जनता की युद्ध-नीति। इसके बगैर आपकी सफलता होगी नहीं। आप*

जहाँ एक हिंसा करोगे वहाँ वे सौ हिंसा करने के लिए तैयार हैं। तो आप दिमाग से यह बात निकाल दो।

सच्चा लोकतन्त्र

लोकतन्त्र की लडाई है। सच्चा लोकतन्त्र हम स्थापित करें। लोकतंत्र लाठी से कैसे स्थापित होगा ? शान्ति के बिना ? जो यह समझते हैं कि गांधी वालो का यह खब्त है, जयप्रकाश नारायण का खब्त है, मैं उनसे यह पूछना चाहता हूँ कि चुनाव हो पटना सिटी मे और चुनाव में लाठी चले तो क्या वह लोकतांत्रिक चुनाव हुआ ? क्या उससे लोकतन्त्र स्थापित होगा ? अगर लोकतन्त्र को कायम रखना है, मजबूत रखना है तो वह शान्ति के बगैर नही हो सकता। शान्ति और लोकतन्त्र एक सिक्के के दो पहलू हैं। एक दूसरे के बगैर नही जी सकते हैं; नहीं चल सकते हैं। बडी-बडी क्रान्तियाँ दुनिया मे हुई हैं। इन क्रान्तियो का इतिहास क्या बदलता है ? जहाँ हिंसा से क्रान्ति हुई है नारा यही है कि 'जनता का यह राज है, किसान और मजदूर का यह राज है'। असल मे किसका है ? उसका है जिसके हाथो बन्दूक है। मैं कई बार पहले कह गया हूँ कि माओ का एक वाक्य अक्षरशः सत्य है, सौ फीसदी सही है कि 'सत्ता बन्दूक की नली से निकलती है।' लेकिन मित्रो, आज चीन की जनता के हाथो मे, किसानो के हाथो मे मजदूरो और विद्यार्थियो के हाथो मे बन्दूकें नही हैं। तो राज जनता का कैसा ? सत्ता किसकी फिर ? जिसके हाथो मे बन्दूक, याने किसके हाथो मे ? माओ के हाथो मे, पीपुल्स लिबरेशन आर्मी के हाथो मे। तो जनता के 'नाम पर' होगी क्रान्ति, जनता के 'नाम पर', किन्तु जनता की छाती पर बैठकर राज करेंगे डिक्टेटर लोग, जनता का राज हरगिज नही होगा।

अगर कभी जनता का राज बन सकता है, तो तभी, जब शान्ति रहेगी। लोकतन्त्र रहेगा तभी। ऐसे तो विद्वान लोग कहते हैं कि यह सपना है, जनता 'का' सही राज होगा नही, जनता 'के लिए' हो सकता है। अब्राहम लिंकन की परिभाषा के अनुसार जनता राज करे स्वयं, यह नही होगा। मैं कहता हूँ होगा, और सम्भव होगा, शान्ति रहेगी, लोकतन्त्र रहेगा तभी। दूसरी किसी राजनैतिक व्यवस्था में जनता का

राज नहीं होगा, जनता के नाम पर राज करने वाले होंगे। जनता की छाती पर बैठकर दाल दलने वाले लोग होंगे। इसलिए शान्ति यह गांधीवालों का खब्त नहीं है, नया भारत बनाना है न ? तो क्या चाहते हैं कि अशान्ति के नाम पर, हिंसा के नाम पर, गाँव-गाँव में डकैतियाँ, चोरियाँ हों ? गृहयुद्ध हो भारत में ? यही होगा न। हिंसा का रास्ता खुलेगा, आपस में लड़ेंगे, मर जायेंगे, जो भारत का इतिहास बराबर रहा है।

हिंसा में मेरा विश्वास नहीं है। इसलिए कि मैं लोकतन्त्र को मानता हूँ। मैं जनता को मानता हूँ। मैं नहीं चाहता हूँ कि जिनके हाथ में बन्दूक है वह जनता की छाती पर बैठकर जनता के नाम पर हुकूमत करे। तीन दिनों की बिहार-बन्द की सफलता ने यह सिद्ध कर दिया है कि जनशक्ति ही वास्तविक शक्ति होती है। हिंसा का रास्ता वे ही अपनाते हैं, जिन्हें जनता पर विश्वास नहीं होता या उस पर आस्था नहीं होती। या जिन्हें जनता का विश्वास प्राप्त नहीं होता। जनशक्ति हो तो हिंसा अनावश्यक होती है और हानिकारक होती है एवं जनशक्ति के अभाव में हिंसा बांझ और क्रूर होती है। बिहार-बन्द की इतनी व्यापक सफलता हिंसा से असम्भव थी।

जहां कानून निष्फल होता है। वहां अहिंसा से ही आगे बढ़ना होगा। हिंसा से कुछ नहीं होता। मैंने हिंसक आन्दोलन भी किया है। उसकी सभी विद्या और दर्शन मैं जानता हूँ, लेकिन सोच समझकर मैंने हिंसा का मार्ग छोड़ा है। हिंसा सामान्य मनुष्य की शक्ति नहीं है। बन्दूक की नली में से सत्ता निकलती है। माओ को जानना चाहिए और वे जरूर जानते होंगे कि किसानों और मजदूरों के पास बन्दूकें नहीं होती। और विद्यार्थियों के पास भी बन्दूकें नहीं होतीं। आज तो बन्दूक तीर-धनुष के समान हो गयी है। माओ के पास ऐटम और हाइड्रोजन बम हैं। बड़े-बड़े बमवर्षक हवाई जहाज हैं, मिसाइल्स हैं, किसान और मजदूरों के हाथ में ये सब हथियार आ सकेंगे? हिंस्र तरीके अपनाने पर तो, जिनके हाथ में शस्त्रास्त्र होंगे उन्हीं का राज्य होगा, चाहे वह समाजवाद हो, साम्यवाद हो या और कोई वाद।

न देश में कोई ऐसी संगठित शक्ति शक्तिशाली नहीं देखता हूँ, जो हिंसा की शक्तियों का संग्रह करके हिंसक क्रान्ति, रक्त-क्रान्ति को सफल बना सके। आज हिंसा से अराजकता फैलेगी। अगर असंतोष को शान्तिमय संघर्ष का रास्ता नहीं दिया गया तो छिटपुट हिंसा फैलेगी और उसमें से कोई भी शासक हो, इन्दिराजी हो, और कोई हो, सेना हो सकती है, वह कहेगी — 'अब तो देश बिगड रहा है देश मिट जाएगा। देश में आग लगी हुई है तानाशाही के सिवा कोई रास्ता नहीं है। देश के बुद्धिजीवी लोग कह रहे हैं, लोकतंत्र से कुछ होने-जाने वाला नहीं है। तानाशाही चाहिए, डिक्टेटरशिप चाहिए।' तो इसमें से तानाशाही निकलेगी। संकट के समय ऐसा कोई एक निकलकर आयेगा, कोई हो, सेना के बल पर कहेगा कि हम इस देश में लोकतंत्र को चलने नहीं देंगे, लोकतंत्र असफल हो गया। तो हम नहीं चाहते हैं कि वह हो। मैं तो सोलह आना इसके विरुद्ध हूँ। तो क्या करना होगा? इसके लिए भी आवश्यक है कि जनता के असंतोष को, दुख दर्द को, उसके कष्ट को, रोष को, क्रोध को, सबको, सबको एक दिशा दी जाय, शान्तिमय क्रान्ति की दिशा दी जाय।

मैं अपनी बात कहूँ तो हिंसक क्रान्ति के लिए मुझे कोई नैतिक आपत्ति नहीं। मुझे यदि कोई आपत्ति है तो वह व्यावहारिक है। पहली बात तो यह कि हिंसक क्रान्ति के परिणाम जल्दी आते हैं, यह एक बडा भारी भ्रम है। कोई यह कहे कि रक्त-क्रान्ति अहिंसक क्रान्ति से ज्यादा जल्द होती है, तो दुनिया की क्रान्तियों का इतिहास देखने से ऐसा लगता नहीं। दुनिया की कोई भी हिंसक क्रान्ति थोडे वर्षों में नहीं हुई है और आज तक अपने मूल उद्देश्य तक नहीं पहुँच सकी है। क्रान्तिकारी जमात के हाथ में सत्ता आ जाय, यह कोई क्रान्ति की सफलता नहीं। इससे क्रान्ति का उद्देश्य पूरा नहीं होता। इस 'असफलता' का क्या अर्थ होता है? उसका अर्थ इतना ही होता है कि पुरानी समाज-व्यवस्था को ध्वस्त किया जा चुका, लेकिन ध्वंस हल किसी क्रान्ति का लक्ष्य नहीं हो सकता। उसका लक्ष्य तो हमेशा एक नयी समाज-व्यवस्था का निर्माण करना होता है। लेकिन हिंसक क्रान्ति के

राज नही होगा, जनता के नाम पर राज करने वाले होगे। जनता की छाती पर बैठकर दाल दलने वाले लोग होगे। इसलिए शान्ति यह गांधीवालो का वक्त नही है, नया भारत बनाना है न ? तो क्या चाहते हैं कि अशान्ति के नाम पर, हिंसा के नाम पर, गाँव-गाँव मे डकैतियाँ, चोरियाँ हो ? गृहयुद्ध हो भारत में ? यही होगा न। हिंसा का रास्ता खुलेगा, आपस मे लड़ेंगे, मर जायेंगे, जो भारत का इतिहास बराबर रहा है।

हिंसा में मेरा विश्वास नही है। इसलिए कि मैं लोकतन्त्र को मानता हूँ। मै जनता को मानता हूँ। मैं नहीं चाहता हूँ कि जिनके हाथ में बन्दूक है वह जनता की छाती पर बैठकर जनता के नाम पर हुकूमत करे। तीन दिनो की बिहार-बन्द की सफलता ने यह सिद्ध कर दिया है कि जनशक्ति ही वास्तविक शक्ति होती है। हिंसा का रास्ता वे ही अपनाते हैं, जिन्हें जनता पर विश्वास नही होता या उस पर आस्था नहीं होती। या जिन्हें जनता का विश्वास प्राप्त नही होता। जनशक्ति हो तो हिंसा अनावश्यक होती है और हानिकारक होती है एवं जनशक्ति के अभाव मे हिंसा बाँझ और क्रूर होती है। बिहार-बन्द की इतनी व्यापक सफलता हिंसा से असम्भव थी।

जहाँ कानून निष्फल होता है। वहाँ अहिंसा से ही आगे बढ़ना होगा। हिंसा स कुछ नही होता। मैंने हिंसक आन्दोलन भी किया है। उसकी सभी विद्या और दर्शन मैं जानता हूँ, लेकिन सोच समझकर मैंने हिंसा का मार्ग छोड़ा है। हिंसा सामान्य मनुष्य की शक्ति नही है। बन्दूक की नली मे से सत्ता निकलती है। माओ को जानना चाहिए और वे जरूर जानते होंगे कि किसानो और मजदूरो के पास बन्दूकें नहीं होतीं। और विद्यार्थियो के पास भी बन्दूकें नही होती। आज तो बन्दूक तीर-धनुष के समान हो गयी है। माओ के पास ऐटम और हाइड्रोजन बम हैं। बड़े-बड़े बमवर्षक हवाई जहाज हैं, मिसाइल्स हैं, विमान और मजदूरों के हाथ मे ये सब हथियार आ सकेंगे? हिंसा तरीके अपनाने पर तो, जिनके हाथ मे शस्त्रास्त्र होंगे उन्ही का राज्य होगा, चाहे वह समाजवाद हो, साम्यवाद हो या और कोई वाद।

न देश मे कोई ऐसी सगठित शक्ति शक्तिशाली नही देखता हूँ, जो हिंसा की शक्तियो का सग्रह करके हिंसक क्रान्ति, रक्त-क्रान्ति को सफल बना सके । आज हिंसा से अराजकता फैलेगी । अगर असतोष को शान्तिमय सघर्ष का रास्ता नही दिया गया तो छिटपुट हिंसा फैलेगी और उसमे से कोई भी शासक हो, इन्दिराजी हो, और कोई हो, सेना हो सकती है वह कहेगी — 'अब तो देश बिगड रहा है देश मिट जाएगा । देश मे आग लगी हुई है तानाशाही के सिवा कोई रास्ता नही है । देश के बुद्धिजीवी लोग कह रहे हैं लोकतत्र से कुछ होने-जाने वाला नही है । तानाशाही चाहिए, डिक्टेटरशिप चाहिए ।' तो इसम से तानाशाही निकलगी । सकट के समय ऐसा कोई एक निकलकर आयेगा, कोई हो, सना के बल पर कहेगा कि हम इस देश मे लोकतत्र को चलने नही देंगे, लोकतत्र असफल हो गया । तो हम नहीं चाहते हैं कि वह हो । मैं तो सोलह आना इसके विरुद्ध हूँ । तो क्या करना होगा ? इसके लिए भी आवश्यक है कि जनता के असतोष को, दुख दर्द को, उसके कष्ट को, रोष को क्रोध को सबको, सबको एक दिशा दी जाय, शान्तिमय क्रान्ति की दिशा दी जाय ।

मैं अपनी बात कहूँ तो हिंसक क्रान्ति के लिए मुझे कोई नैतिक आपत्ति नही । मुझे यदि कोई आपत्ति है तो वह व्यावहारिक है । पहली बात तो यह कि हिंसक क्रान्ति के परिणाम जल्दी आते है, यह एक बडा भारी भ्रम है । कोई यह कहे कि रक्त क्रान्ति अहिंसक क्रान्ति से ज्यादा जल्द होती है, तो दुनिया की क्रान्तियो का इतिहास देखने से ऐसा लगता नही । दुनिया की कोई भी हिंसक क्रान्ति थोडे वर्षों मे नही हुई है और आज तक अपने मूल उद्देश्य तक नही पहुँच सकी है । क्रान्तिकारी जमात के हाथ मे सत्ता आ जाय, यह कोई क्रान्ति की सफलता नही। इससे क्रान्ति का उद्देश्य पूरा नही होता। इस 'असफलता' का क्या अर्थ होता है ? उसका अर्थ इतना ही होता है कि पुरानी समाज-व्यवस्था को ध्वस्त किया जा चुका, लेकिन ध्वस हल किसी क्रान्ति का लक्ष्य नही हो सकता । उसका लक्ष्य तो हमेशा एक नयी समाज-व्यवस्था का निर्माण करना होता है । लेकिन हिंसक क्रान्ति के

राज नही होगा, जनता के नाम पर राज करने वाले होगे। जनता की छाती पर बैठकर दाल दलने वाले लोग होगे। इसलिए शान्ति यह गांधीवालों का यन्त्र नही है, नया भारत बनाना है न ? तो क्या चाहते हैं कि अशान्ति के नाम पर, हिंसा के नाम पर, गांव-गांव मे डकैतियाँ, चोरियाँ हो ? गृहयुद्ध हो भारत मे ? यही होगा न। हिंसा का रास्ता खुलेगा, आपस मे लड़ेंगे, मर जायेंगे, जो भारत का इतिहास बराबर रहा है।

हिंसा में मेरा विश्वास नही है। इसलिए कि मैं लोकतन्त्र को मानता हूँ। मै जनता को मानता हूँ। मैं नही चाहता हूँ कि जिनके हाथ में बन्दूक है वह जनता की छाती पर बैठकर जनता के नाम पर हुकूमत करे। तीन दिनो की बिहार-बन्द की सफलता ने यह सिद्ध कर दिया है कि जनशक्ति ही वास्तविक शक्ति होती है। हिंसा का रास्ता वे ही अपनाते हैं, जिन्हे जनता पर विश्वास नही होता या उस पर आस्था नही होती। या जिन्हें जनता का विश्वास प्राप्त नही होता। जनशक्ति हो तो हिंसा अनावश्यक होती है और हानिकारक होती है एवं जनशक्ति के अभाव मे हिंसा बांझ और क्रूर होती है। बिहार-बन्द की इतनी व्यापक सफलता हिंसा से असम्भव थी।

जहां कानून निष्फल होता है। वहां अहिंसा से ही आगे बढ़ना होगा। हिंसा स कुछ नही होता। मैंने हिंसक आन्दोलन भी किया है। उसकी सभी विद्या और दर्शन मैं जानता हूँ, लेकिन सोच समझकर मैंने हिंसा का मार्ग छोड़ा है। हिंसा सामान्य मनुष्य की शक्ति नही है। बन्दूक की नली मे से सत्ता निकलती है। माओ को जानना चाहिए और वे जरूर जानते होंगे कि किसानो और मजदूरों के पास बन्दूकें नहीं होतीं। और विद्यार्थियो के पास भी बन्दूकें नही होती। आज तो बन्दूक तीर-धनुष के समान हो गयी है। माओ के पास ऐटम और हाइड्रोजन बम हैं। बड़े-बड़े बमवर्षक हवाई जहाज हैं, मिसाइल्स हैं, किसान और मजदूरों के हाथ मे ये सब हथियार आ सकेंगे? हिंसा तरीके अपनाने पर तो, जिनके हाथ मे शस्त्रास्त्र होगे उन्ही का राज्य होगा, चाहे वह समाजवाद हो, साम्यवाद हो या और कोई वाद।

मैं देश मे कोई ऐसी सगठित शक्ति शक्तिशाली नही देखता हूँ, जो हिंसा की शक्तियो का सग्रह करके हिंसक क्रान्ति, रक्त-क्रान्ति को सफल बना सके। आज हिंसा से अराजकता फैलेगी। अगर असतोष को शान्तिमय सघर्ष का रास्ता नही दिया गया तो उिटपुट हिंसा फैलेगी और उसमे से कोई भी शासक हो, इन्दिराजी हो, और कोई हो, सेना हो सकती है वह कहेगी — 'अब तो देश बिगड रहा है देश मिट जाएगा। देश मे आग लगी हुई है तानाशाही के सिवा कोई रास्ता नही है। देश के बुद्धिजीवी लोग कह रहे हैं, लोकतन्त्र से कुछ होने-जाने वाला नहीं है। तानाशाही चाहिए, डिक्टेटरशिप चाहिए।' तो इसमे से तानाशाही निकलेगी। सकट के समय ऐसा कोई एक निकलकर आयेगा, कोई हो, सेना के बल पर कहेगा कि हम इस देश मे लोकतन्त्र को चलने नहीं देंगे, लोकतन्त्र असफल हो गया। तो हम नहीं चाहते हैं कि वह हो। मैं तो सोलह आना इसके विरुद्ध हूँ। तो क्या करना होगा ? इसके लिए भी आवश्यक है कि जनता के असतोष को, दुख दर्द को, उसके कष्ट को, रोष को क्रोध को, सबको, सबको एक दिशा दी जाय, शान्तिमय क्रान्ति की दिशा दी जाय।

मैं अपनी बात कहूँ तो हिंसक क्रान्ति के लिए मुझे कोई नैतिक आपत्ति नही। मुझे यदि कोई आपत्ति है तो वह व्यावहारिक है। पहली बात तो यह कि हिंसक क्रान्ति के परिणाम जल्दी आते हैं, यह एक बडा भारी भ्रम है। कोई यह कहे कि रक्त-क्रान्ति अहिंसक क्रान्ति से ज्यादा जल्द होती है, तो दुनिया की क्रान्तियो का इतिहास देखने से ऐसा लगता नही। दुनिया की कोई भी हिंसक क्रान्ति थोडे वर्षों मे नही हुई है और आज तक अपने मूल उद्देश्य तक नही पहुँच सकी है। क्रान्तिकारी जमात के हाथ मे सत्ता आ जाय, यह कोई क्रान्ति की सफलता नहीं। इससे क्रान्ति का उद्देश्य पूरा नहीं होता। इस 'असफलता' का क्या अर्थ होता है ? उसका अर्थ इतना ही होता है कि पुरानी समाज-व्यवस्था को ध्वस्त किया जा चुका, लेकिन ध्वस हल किसी क्रान्ति का लक्ष्य नही हो सकता। उसका लक्ष्य तो हमेशा एक नयी समाज-व्यवस्था का निर्माण करना होता है। लेकिन हिंसक क्रान्ति के

सफल होने के बाद क्रान्तिकारियों को यह नयी व्यवस्था लाने में कितने वर्ष लगते हैं ? उक्त सफलता के बाद उनका पहला काम हमेशा यह देखा गया है कि अपनी सत्ता के लिए वे खूनी संघर्ष मे पिल पड़ते हैं। अपने सपनों का समाज—यदि वे अपने आपसी रक्तपात में बह न गये हों—बनाने मे कितना समय लगता है ?

बल्कि अनुभव तो यह है कि रक्त-क्रान्ति से जो नया समाज बनता है, वह उस समाज से बहुत भिन्न बनता है, जिसकी कल्पना क्रान्तिकारियों ने पहले की होती है। जिन उद्देश्यों को लेकर रक्त-क्रान्ति होती है, वे उद्देश्य तो पूरे होते नहीं, बल्कि उसके विपरीत परिणाम ही आते हैं। क्रान्ति के पहले जैसे समाज की रचना क्रान्तिकारी सोचते थे, करना चाहते थे, क्रान्ति के बाद वैसी रचना नही हो पाई।

इतिहास में क्या ऐसी भी हिंसक क्रान्ति हुई है, जो अपने अभीष्ट आदर्शों को प्राप्त करने में सफल हुई हो ? जरा फ्रांस की क्रान्ति पर तथा उसके समानता, स्वतंत्रता और बन्धुता के आदर्शों पर विचार करें। फ्रांस की क्रान्ति को हुए लगभग दो सौ वर्ष बीत चुके, लेकिन समानता-स्वतन्त्रता और बन्धुता के उसके मूल उद्देश्य क्या सिद्ध हुए हैं ? रूस की क्रान्ति को लगभग 55 वर्ष हुए। लेकिन क्या वहाँ मजदूरों के हाथ में सत्ता आई है? लेनिन का प्रथम सूत्र था : सर्व-सत्ता सोवियतों (पंचायतो) मे लेकिन आज वहाँ तरुण यहाँ की तरह मुक्तभाव से बोल-चाल नहीं सकते। इसीलिए उनको गुप्त रूप से बुलेटिन निकालनी पड़ती है। क्रान्ति को सफल हुए 55 वर्ष बीत गये, फिर भी यह स्थिति है।

क्रान्ति का लक्ष्य है, हर व्यक्ति को आवश्यकताभर मिलेगा और हर व्यक्ति शक्तिभर समाज को देगा। रूस और चीन में जो हिंसक क्रान्तियाँ हुई, उनका भी लक्ष्य यही था। इसके बदले वहाँ तो अभी भी 'काम बराबर दाम' का पूँजीवादी सिद्धान्त ही कायम है। आज भी उन लोगों के सामने यह एक बड़ा सवाल है कि किस तरह जनता को नये मूल्यों में प्रशिक्षित करें, किस तरह समाज में ऐसा मानस-परिवर्तन लायें, ताकि जिन आदर्शों को सामने रखकर क्रान्ति हुई थी, उन्हें व्यवहार में लाया जा सके। मैं नही कह सकता कि रूसवाले भला इस आदर्श

तब पहुँच सकेंगे।

इस तरह, दुनिया भर के हिंसक क्रान्तियों का इतिहास देखेंगे तो पता चलेगा कि पुराने समाज को तोड़ने में हिंसक क्रान्ति लम्बे अर्से के बाद सफल होती है और उसके बाद नये समाज के निर्माण में भी बहुत समय लगता है तथा निर्माण धीरे धीरे ही हो पाता है। दूसरी तरफ अहिंसक क्रान्ति में पुराने समाज को बदलने और नये समाज को गढने का काम साथ साथ होता रहता है। अहिंसक प्रक्रिया में यह गुण है कि परिवर्तन और नवनिर्माण दोनों साथ-साथ चल सकते हैं। इन सब बातों को देखते हुए मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि भारत में अगर कभी रक्त क्रान्ति होगी तो ज्यादा विलम्ब से होगी। और अहिंसक क्रान्ति उससे कहीं जल्दी होगी और वह हो रही है।

दूसरी बात समझने की यह है कि अभी यह निश्चित नहीं कि हिंसक क्रान्तिकारी आन्दोलन हमेशा सामाजिक क्रान्ति की तरफ ही हमें ले जायगा। उसमें से प्रतिक्रिया भी पैदा हो सकती है और अन्त में वह एक फासिस्ट तानाशाही का रूप ले सकती है। अथवा अन्ततः उसमें से अराजकता-व्यापक दुःख-कष्ट, राष्ट्रीय विघटन एवं गुलामी के परिणाम भी पैदा हो सकते हैं। जो लोग हिंसा का प्रचार करते हैं, उन्हें इन सम्भावनाओं पर विचार करना चाहिए।

तीसरी बात यह है कि सत्ता हमेशा ही क्रान्ति करने वालों में से ऐसे मुट्ठीभर लोगों द्वारा हड़प ली जाती है, जो सबसे ज्यादा निर्भय होते हैं। ऐसा होना अनिवार्य है।

चौथी और बुनियादी बात यह है कि क्रान्तियाँ क्रान्तिकारियों की बिलकुल मर्जी पर ही नहीं हुआ करती। क्रान्ति की सफलता के लिए सामाजिक एवं ऐतिहासिक परिस्थितियाँ परिपक्व होनी चाहिए। इसमें पूरी शताब्दी लग सकती है, जैसा कि इतिहास में अक्सर हम देखते हैं। स्वराज के बाद भारत में हिंसा में आस्था रखनेवाले लोगों ने विनोबा से पहले काम शुरू किया है। वे तेलगाना के रक्तपात के समय में ही क्रान्ति करने का प्रयास कर रहे हैं। लेकिन इन 22-23 वर्षों में वे कहाँ तक आगे बढे हैं? तेलगाना में हिंसक क्रान्ति सफल हुई?

सफल होने के बाद क्रान्तिकारियों को यह न
वर्ष लगते है ? उक्त सफलता के बाद उन
देखा गया है कि अपनी सत्ता के लिए वे
हैं। अपने सपनों का समाज—यदि वे अपने
गये हों—बनाने मे कितना समय लगता है

बल्कि अनुभव तो यह है कि रक्त-क्रा
है, वह उस समाज से बहुत भिन्न बनता
कारियों ने पहले की होती है। जिन उ
होती है, वे उद्देश्य तो पूरे होते नहीं, ब
ही आते हैं। क्रान्ति के पहले जैसे समाज
थे, करना चाहते थे, क्रान्ति के बाद वैसी

इतिहास में क्या ऐसी भी हिंसक क्रा
आदर्शों को प्राप्त करने मे सफल हुई हो
तथा उसके समानता, स्वतंत्रता और ब
करें। फ्रांस की क्रान्ति को हुए लगभग
समानता-स्वतन्त्रता और बन्धुता के उस
हैं ? रूस की क्रान्ति को लगभग 55 वर्ष
के हाथ में सत्ता आई है? लेनिन का प्रथम
(पंचायतों) मे लेकिन आज वहाँ तरुण य
चाल नहीं सकते। इसीलिए उनको गुप्त र
है। क्रान्ति को सफल हुए 55 वर्ष बीत

क्रान्ति का लक्ष्य है, हर व्यक्ति
हर व्यक्ति शक्तिभर समाज को देगा।
क्रान्तियाँ हुईं, उनका भी लक्ष्य यही थ
भी 'काम बराबर दाम' का पूंजीवादी
उन लोगों के सामने यह एक बड़ा सवा
नये मूल्यों में प्रशिक्षित करें, किस तरह
लायें, ताकि जिन आदर्शों को सामने रख
में लाया जा सके। मैं नहीं कह सकत

स्वराज्य मे लडाई लडी हमने वगैर बन्दूक के । वहाँ शक्ति कहाँ से आयी थी भाई ? तो शक्ति आयी थी त्याग स बलिदान स और कुर्बानिया से । कल गाली दे दी किसी को किसी का कुर्ता फाड दिया । यह सब फूहडपन, वलगेरिटी है । यह कोइ मिलीट-सी नही है । इसमे न हिंसा की शक्ति है और न अहिंसा की शक्ति । हम तो एक नैतिक क्रांति चाहते हैं ।

इसलिए यह काम पूरी शक्ति के साथ सत्यतापूर्वक और तीव्रता से हो, यह अत्यन्त जरूरी है । इसके लिए तो हमे अपना सम्पूर्ण जीवन इसमे लगा देना है । मैं तो किसी दूसरी चीज की कल्पना भी नही कर सकता जो हमारी निष्ठा और पुरुषार्थ के लिए इसकी अपेक्षा अधिक उपयोगी हो । शान्ति सेना की रीढ ऐसे लोगो से ही बन सकती है, जिन्होने क्रान्ति वेदी पर अपना जीवन समपण कर दिया है । फुरसत स काम करने से नही चलेगा । इसमे तो जीवन-दान ही देना होगा ।

सम्पूण क्राति कोई एक वर्ष मे तो नही होती है, और उसके लिए 50 वर्ष भी नही चाहिए। मैंने बार-बार कहा है कि सामान्य परिस्थिति म जो काम सौ पचास वर्ष मे हो सकता है वह क्रान्तिकारी परिस्थिति म पांच वष मे हो जायगा इसलिए मैं कहना चाहता हूँ कि हम लोगो को समय को पहचानना चाहिए । इसलिए इस मौके पर अगर पुरानी चर्चा और दलीलें करते रहेंगे और उसी मे चक्कर काटते रहेंगे तो छोटे मोटे जो काम पहले करते रहे वे ही करते रह जायेंगे । सम्पूर्ण क्रान्ति अकेले बिहार मे नही हो सकती है। सारे देश मे लहर दौडेगी तो होगी । उसका कितना हिस्सा हम बिहार मे कर सकते है वह करेंगे ।

ये वामपथी पार्टियो के लोग, जिनकी सहानुभूति है इस सघर्ष के साथ, वे चाहते हैं कि हुकूमत बनेगी तो क्या-क्या होगा, सारा कार्यक्रम लिख दिया जाय । मैंने उनसे कहा कि भाई, आज तक कोई ऐसी क्रान्ति नही हुई है जो किसी किताब के मुताबिक हुई हो, चाहे वह मार्क्स की किताब हो, लेनिन की किताब हो, कि माओ की किताब हो या किसी और की किताब हो । हर क्रान्ति अपनी किताब स्वय लिखती है । तो बिहार की यह क्रान्ति भी जो भारत मे फैलेगी, अपनी किताब

बंगाल में हुई ? नहीं।

जब तक समाज भीतर से तैयार नहीं होता, तब तक क्रान्ति नहीं होती। यह क्रान्ति-शास्त्र का एक स्वयमिद्ध सिद्धान्त है। पुराना समाज अन्दर से जर्जर हो जाता है, तब परिस्थिति परिपक्व होती है और क्रांति होती है। समस्याएँ एक सीमा के बाहर बढ जाती हैं तो घातक बन जाती हैं। कार्ल मार्क्स ने कहा था कि 'क्वान्टिटी चेंजेस इनटू क्वालिटी'—समस्या का अतिरेक परिस्थिति में गुणात्मक परिवर्तन कर देता है। भ्रष्टाचार अति अधिक हो जाने पर क्वालिटेटिव चेंज—गुणात्मक परिवर्तन आ जाता है। वैसा न हो तो समाज टिक नहीं सकता, खत्म हो जायगा, मिट जायगा।

क्रान्ति को कोई क्रान्तिकारी नेता पैदा नहीं करता। क्रान्ति को न लेनिन ने किया, न माओ ने किया, न गांधी ने। क्रान्ति परिस्थिति में से निर्माण होती है। क्रान्तिकारी नेता की पहचान यह है कि वह परिस्थिति की नब्ज को पहचान लेता है। बोल्शेविक पार्टी की सभा लेनिनग्राड में होती थी। लेनिन ने कहा, 'छह नवम्बर को क्रान्ति होती है तो वह समय से पहले होगी और आठ नवम्बर को होती है तो समय के बाद होगी। इसलिए हमको सात तारीख को ही क्रान्ति करनी होगी।' इस बात के लिए उन्होने दलीलें पेश कीं। उसमें एक बात यह कही कि हमारी क्रान्ति के लिए जार के सिपाहियों ने भी अपना वोट दिया है। किसी ने पूछा, यह कैसे ? लेनिन ने कहा, 'सैनिकों ने अपने पैरों से वोट दिया है। देखिये न मोर्चे पर से आये दिन हजारों सैनिक अपनी बन्दूकें लेकर भाग रहे हैं।'

जब गांधी के जमाने में अहिंसक आन्दोलन द्वारा स्वराज्य कांग्रेस का उद्देश्य नहीं बन सका, तो आज मेरी क्या बिसात है कि मैं अहिंसा के नाम पर कुछ करना चाहूँ। तो मैं शान्तिमय उपायों की बात करता हूँ। मैं तो अहिंसकों की बात नहीं करता, शान्ति की बात करता हूँ। शान्तिमय तरीकों से जनता अपने दुःख के खिलाफ अपनी मुसीबतों के खिलाफ, अपने शोषण, अन्याय के खिलाफ, अगर संघर्ष न कर सके और उसका मार्ग नहीं मिलता है तो वहाँ छुटपुट हिंसा फैलेगी।

स्वराज्य मे लडाई लडी हमने बगैर बन्दूक के। वहाँ शक्ति कहाँ से आयी थी भाई ? तो शक्ति आयी थी त्याग से बलिदान से और कुर्बानियां से। कल गाली दे दी किसी को, किसी का कुर्ता फाड दिया। यह सब फूहडपन, वलगेरिटी है। यह कोई मिलीटेन्सी नही है। इसमे न हिंसा की शक्ति है और न अहिंसा की शक्ति। हम तो एक नैतिक क्रांति चाहते हैं।

इसलिए यह काम पूरी शक्ति के साथ सत्यतापूर्वक और तीव्रता से हो, यह अत्यन्त जरूरी है। इसके लिए तो हमे अपना सम्पूर्ण जीवन इसमे लगा देना है। मैं तो किसी दूसरी चीज की कल्पना भी नही कर सकता, जो हमारी निष्ठा और पुरुषार्थ के लिए इसकी अपेक्षा अधिक उपयोगी हो। क्रान्ति-सेना की रीढ ऐसे लोगो से ही बन सकती है, जिन्होंने क्रान्ति वेदी पर अपना जीवन समर्पण कर दिया है। फुरसत से काम करने से नही चलेगा। इसमे तो जीवन-दान ही देना होगा।

सम्पूर्ण क्रांति कोई एक वर्ष मे तो नही होती है, और उसके लिए 50 वर्ष भी नही चाहिए। मैंने बार-बार कहा है कि सामान्य परिस्थिति मे जो काम सौ पचास वर्ष मे हो सकता है वह क्रान्तिकारी परिस्थिति मे पाँच वर्ष मे हो जायगा इसलिए मैं कहना चाहता हूँ कि हम लोगो को समय को पहचानना चाहिए। इसलिए इस मौके पर अगर पुरानी चर्चा और दलीलें करते रहेंगे और उसी मे चक्कर काटते रहेंगे तो छोटे मोटे जो काम पहले करते रहे वे ही करते रह जायेंगे। सम्पूर्ण क्रान्ति अकेले बिहार मे नही हो सकती है। सारे देश मे लहर दौडेगी तब होगी। उसका कितना हिस्सा हम बिहार मे कर सकते है वह करेंगे।

ये वामपंथी पार्टियों के लोग, जिनकी सहानुभूति है इस संघर्ष के साथ, वे चाहते है कि हुकूमत बनेगी तो क्या-क्या होगा, सारा कार्यक्रम लिख दिया जाय। मैंने उनसे कहा कि भाई, आज तक कोई ऐसी क्रान्ति नही हुई है जो किसी किताब के मुताबिक हुई हो, चाहे वह मार्क्स की किताब हो, लेनिन की किताब हो, कि माओ की किताब हो या किसी और की किताब हो। हर क्रान्ति अपनी किताब स्वयं लिखती है। तो बिहार की यह क्रान्ति भी जो भारत मे फैलेगी, अपनी किताब

प्रयोग किया था, तब वे वृद्ध नही, युवा थे। नही मित्रो ! अध्यात्म बुडापे की बुढभस नही, तरुणाई की उत्तु गतम उडान है।

इसलिए जिस अभिनव क्रान्ति की ओर मैंने इगित किया है, उसके सैनिक और सेनापति तरुण ही हो सकते हैं। इस सास्कृतिक क्रान्ति के बिना भारत एव भारतीयता का बचना दुष्कर प्रतीत हो रहा है।

इस प्रकार के आह्वान पर कौन युवक सामने न आयेगा। धीरे-धीरे जे० पी० के अनुयायियो की सख्या दिन दूनी रात चौगुनी बढती गई। प्रभाव गुजरात तक पहुँच ही चुका था।

19 महीनो की काली रात

सम्पूर्ण क्रान्ति का आन्दोलन परवान चढने लगा। जनता ने जे० पी० को लोकनायक' कह कर पुकारा। श्री राजनारायण ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय म श्रीमती इन्दिरा गांधी के चुनाव के विरुद्ध याचिका दायर की थी। श्री राजनारायण ने कहा था कि श्रीमती गाँधी ने भ्रष्ट तरीके अपना कर चुनाव लडा है। उच्च न्यायालय के जस्टिस जग-मोहन लाल सिन्हा ने अपने निर्णय मे कहा कि श्रीमती गाधी ने भ्रष्ट तरीके अपनाए हैं इसलिए उनका निर्वाचन अवैध घोषित किया जाता है। यह निर्णय 12 जून 75 को दिया गया।

इलाहाबाद उच्च न्यायालय के बाद सारे देश मे चेतना की नई लहर दौड गयी। श्रीमती गांधी से त्यागपत्र की आशा थी लेकिन उन्होने त्यागपत्र नही दिया। जगह-जगह पर उनके त्यागपत्र की माग की गयी। 24 जून 1975 को जे पी. पटना से दिल्ली गए। 25 जून को दिल्ली के राम लीला मैदान मे आयोजित एक विशाल जन-सभा मे लाखो लोगो के बीच उन्होंने प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी से त्यागपत्र देने की मांग की। उन्होने कहा कि भ्रष्ट व्यक्तियो को सत्ता मे रहने का कोई अधिकार नही है। जनता को भ्रष्ट सरकार का आदेश नही मानना चाहिए। जे० पी० ने सेना और पुलिस से कहा कि वे ऐसी सरकार के आदेशो का पालन न करें जो भ्रष्टाचार के बल पर टिकी हुई है।

सरकार को बहाना मिल गया। अगले दिन 26 जून को प्रात काल तीन बजे जयप्रकाशजी को गिरफ्तार करके नजरबन्द कर दिया गया।

तैयार कर रही है। यह नकल नहीं करेगी किसी की। आज हम और आप सब वामपंथी लोग मिलकर क्या कर सके हैं? 27 वर्ष में क्या किया है? तो भूल जाओ इन सब बातों को। यह जन आन्दोलन है और जैसे-जैसे आन्दोलन बढ़ेगा वैसे-वैसे रास्ता खुलेगा। नया-नया प्रोग्राम बनेगा। मैं कौन होता हूँ कह देने वाला कि पाँच वर्ष के बाद यह होगा, हुकूमत बनेगी तो उसका यह प्रोग्राम रहेगा, जनता अपना प्रोग्राम बनायेगी।

आज हम एक बुनियादी क्रान्ति की देहली पर आ पहुँचे हैं। समानता, स्वतन्त्रता, बन्धुता, बिरादरी, राज्यविहीन समाज हर एक को आवश्यकतानुसार मिले और हर एक अपनी क्षमता भर समाज को दे—ये सब ध्येय अब सिद्ध हों, प्रत्यक्ष व्यवहार में उनका अमल हो—ऐसी आज के युग की मांग है। गांधी जी एक बात बार-बार कहते थे कि दूसरी क्रान्तियाँ इकहरी हैं, वे मात्र समाज के बाहरी ढाँचे में ही परिवर्तन लाती है, जब कि मेरी क्रान्ति दुहरी क्रान्ति होगी, मानवीय क्रांति होगी, जो मनुष्य के मानस में शुरू होगी और अन्त मे समाज के बाहरी ढाँचे में परिवर्तन लायेगी। यह आध्यात्मिक क्रान्ति होगी।

इस देश का आध्यात्मिक उत्तराधिकार भी आज ऐसे एक अभिनव क्रांति के लिये आह्वान कर रहा है।

इस आह्वान को कौन सुनेगा? कौन आगे कदम बढ़ायेगा? इस देश का अध्यात्म बूढ़ों की वस्तु नहीं, जवानी की वस्तु रही है। जब हृषीकेश ने जीवन के कुरुक्षेत्र मे अपूर्व अध्यात्म का पांचजन्य फूंका था तब वे वृद्ध नही युवा थे। और वे थे सारथी भारत की उत्कृष्ट तरुणाई के रथ के। जब अपनी प्रिया की गोद में नवजात राहुल को सोया छोड़कर सिद्धार्थ अपनी अद्वितीय सांस्कृतिक क्रान्ति के पथ पर चल पड़े थे, तब वह वृद्ध नही, युवा थे। अद्वैत के अन्यतम शोधक शंकर ने जब अपनी दिग्विजय-यात्रा की थी, तब वे वृद्ध नहीं, युवा थे। विवेकानन्द ने शिकागो के रंगमंच पर जब वेदान्त के सार्वभौम धर्म का उद्घोष किया था, तब वे वृद्ध नहीं, युवा थे। गांधी जी ने दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद के दावानल मे कूदकर जब अध्यात्म का आग्नेय

प्रयोग किया था, तब वे वृद्ध नही, युवा थे। नही मित्रो ! अध्यात्म बुढापे की बुढभस नही, तरुणाई की उत्तु गतम उडान है।

इसलिए जिस अभिनव क्रान्ति की ओर मैंने इगित किया है उसके सैनिक और सेनापति तरुण ही हो सकते हैं। इस सास्कृतिक क्राति के बिना भारत एव भारतीयता का बचना दुष्कर प्रतीत हो रहा है।

इस प्रकार के आह्वान पर कौन युवक सामने न आयेगा। धीरे धीरे जे० पी० के अनुयायियो की सख्या दिन दूनी रात चौगुनी बढती गई। प्रभाव गुजरात तक पहुँच ही चका था।

19 महीनो की काली रात

सम्पूर्ण क्राति का आन्दोलन परवान चढने लगा। जनता ने जे० पी० को लाकनायक' कह कर पुकारा। श्री राजनारायण ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय म श्रीमती इन्दिरा गाँधी के चुनाव के विरुद्ध याचिका दायर की थी। श्री राजनारायण ने कहा था कि श्रीमती गाँधी न भ्रष्ट तरीके अपना कर चुनाव लडा है। उच्च न्यायालय के जस्टिस जग मोहन लाल सिन्हा ने अपने निर्णय मे कहा कि श्रीमती गाधी ने भ्रष्ट तरीके अपनाए हैं इसलिए उनका निर्वाचन अवैध घोषित किया जाता है। यह निर्णय 12 जून 75 को दिया गया।

इलाहाबाद उच्च न्यायालय के बाद सारे देश मे चेतना की नई लहर दौड गयी। श्रीमती गाँधी से त्याग पत्र की आशा थी लेकिन उन्होने त्यागपत्र नही दिया। जगह जगह पर उनके त्यागपत्र की माग की गयी। 24 जून 1975 को जे पी पटना से दिल्ली गए। 25 जून को दिल्ली के राम लीला मैदान मे आयोजित एक विशाल जन-सभा मे लाखो लोगो के बीच उन्होंने प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी से त्यागपत्र दने की माँग की। उन्होन कहा कि भ्रष्ट व्यक्तियो को सत्ता मे रहने का कोई अधिकार नही है। जनता को भ्रष्ट सरकार का आदेश नहीमानना चाहिए। ज० पी० ने सेना और पुलिस से कहा कि व ऐसी सरकार के आदेशो का पालन न करें जो भ्रष्टाचार के बल पर टिकी हुई है।

सरकार को बहाना मिल गया। अगले दिन 26 जून को प्रात काल तीन बजे जयप्रकाशजी को गिरफ्तार करके नजरबन्द कर दिया गया।

मेडिकल साइसेज मे जांच के लिये भेजा गया। वहाँ के डा० सुजम बी० राय और डा० एम० एल भाटिया जे० पी० का पहले भी इलाज कर चुके थे, वे उन्हे अच्छी तरह जानते थे। जे०पी० को मडिकल इस्टीटिट्यूट मे दो दिन तक रखा गया, फिर 1 जुलाइ को भारतीय वायुसेना के विमान द्वारा चडीगढ इलाज क लिए भेज दिया गया। चडीगढ में उन्हें पोस्ट ग्रेजुएट इस्टीटियूट आफ मेडिकल एजूकेशन एड रिसच मे नजरबद रखा गया। यहाँ वे 12 नवम्बर 1975 तक रहे। लोगो का कहना है कि यही पी०जी०आई० अस्पताल म जान बूझकर उनके गुर्दे खराब कर दिय गये ताकि वह अपने आप जल्दी ही मौत के मुँह मे चले जाय। स्वराज्य की जेल ने उन्हें यह रोग दिया। इस अस्पताल म उन्हें छिपाकर रखा गया था। कागजात मे उनका असली नाम दर्ज नही किया गया था। कुछ कागजात पर सिफ नारायण दास लिखा गया या कुछ और लिखकर सकेत मे काम चलाया गया। असली कागजात की जानकारी बहुत कम लोगो को थी। इन सब बातो से सदेह बढता है कि जानबूझकर उनके जीवन के साथ खिलवाड किया गया।

21 जुलाई 1975 को श्री जयप्रकाश नारायण ने प्रधानमत्री को पत्र लिखा — मैं समाचार पत्रो मे छपे आपके भाषणो और भेंटवार्ताओ से व्याकुल हूँ। (यह तथ्य है कि आपको अपने कृत्य के औचित्य को सिद्ध करने के लिए प्रतिदिन ही कुछ न-कुछ कहना पड रहा है। यह आपकी दोष भावना स्पष्ट करता है) प्रेस और जनमत का मुँह बद करके झूठ और भ्रामक तथ्यो की आलोचना व विरोध से निडर होकर आप कहती जा रही हैं।

आपके कहने का तात्पर्य जहाँ तक मैं समझ सका हूँ, यही है कि— (अ) सरकार को उखाडने की योजना थी (ब) एक व्यक्ति पुलिस व सेना मे विद्रोह की भावना फैला रहा है।

मैं ही जब नाटक का खलनायक हूँ तो मुझे सारे तथ्य स्पष्ट रूप मे रख देने चाहिए। यह सम्भवतः आपके लिए बेकार हो, क्योकि आपके सभी भ्रामक व झूठे तथ्य सुनियोजित और सुरचित हैं फिर भी आखिर सत्य कही तो होगा ही।

उन्हें गांधी शान्ति प्रतिष्ठान से गिरफ्तार किया गया। देश भर में गिरफ्तारियाँ हुईं। प्रतिपक्ष के सारे नेता गिरफ्तार कर लिए गये। श्रीमती गांधी ने आपात स्थिति की घोषणा करके जनता के मूलभूत अधिकार छीन लिये। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, जमायते इस्लामी, आनंद मार्ग और नक्सलवादियों आदि 27 संगठनों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। समाचार पत्रों पर सेंसर लगाकर उनका गला घोट दिया गया। अब कोई भी समाचार-पत्र सरकार के विरुद्ध एक पंक्ति भी नही प्रकाशित कर सकता था। प्रधानमन्त्री और सरकार की आलोचना करना गैरकानूनी घोषित किया गया। सरकार की आलोचना किसी भी तरह नही की जा सकती थी। देश में तानाशाही का बोल-बाला था अधिकारियों को मनमाने अधिकार दिये गये। आतरिक सुरक्षा कानून (मीसा) और भारत रक्षा कानून (डी० आई० आर०) के अन्तर्गत किसी को भी गिरफ्तार किया जा सकता था। गिरफ्तारी के लिए कारण बताना जरूरी नहीं था। संविधान में मनमाने संशोधन किए गए, जिनके अनुसार प्रधानमन्त्री पर किसी भी तरह का कोई मुकदमा नही चलाया जा सकता था।

जे० पी० को गिरफ्तारी के बाद कार से सोहना (हरियाणा) ले जाया गया। उन्हें पता लगा कि श्री मोरारजी देसाई को भी गिरफ्तार किया गया है और वही लाया गया है। वे भी उसी विश्राम भवन में नजर बन्द किये गये थे। लेकिन दोनों को अलग-अलग रखा गया और भेंट नही हुई। एक पुलिस अफ़सर से जे० पी० ने अनुरोध किया कि भोजन के समय हम दोनों को मिलने दें। लेकिन अफसर ने यह प्रार्थना मंजूर नही की।

सोहना विश्राम भवन में उन्हें केवल तीन दिन तक रखा गया। डाक्टरों ने वहाँ स्वास्थ्य की जाँच की। उन्होने हृदय मे गड़बड़ी बताई पहली बार पता चला कि जे० पी० हृदय रोग से पीड़ित हैं। इससे पहले उन्हे यह रोग कभी नही हुआ। गिरफ्तारी से पहले उनका स्वास्थ्य ठीक ठाक था। लेकिन गिरफ्तारी के तीन दिनों मे ही हृदय रोग की जानकारी मिली। उन्हें नई दिल्ली के आल इण्डिया इन्सटीटयूट आफ

मेडिकल साइसेज मे जाँच के लिये भेजा गया। वहाँ के डा० सुजम बी० राय और डा० एम० एल भाटिया जे० पी० का पहले भी इलाज कर चुके थे, वे उन्हे अच्छी तरह जानते थे। जे०पी० को मेडिकल इस्टीटिट्यूट मे दो दिन तक रखा गया, फिर 1 जुलाइ को भारतीय वायुसेना के विमान द्वारा चडीगढ इलाज के लिए भेज दिया गया। चडीगढ मे उन्हें पोस्ट ग्रेजुएट इस्टीटियूट आफ मेडिकल एजूकेशन एड रिसच मे नजरबद रखा गया। यहाँ वे 12 नवम्बर 1975 तक रहे। लोगो का कहना है कि यही पी०जी०आई० अस्पताल मे जान बूझकर उनके गुर्दे खराब कर दिय गये ताकि वह अपने आप जल्दी ही मौत के मुँह मे चले जाय। स्वराज्य की जेल ने उन्हें यह रोग दिया। इस अस्पताल मे उन्हें छिपाकर रखा गया था। कागजात मे उनका असली नाम दर्ज नही किया गया था। कुछ कागजात पर सिर्फ नारायण दास लिखा गया या कुछ और लिखकर सकेत मे काम चलाया गया। असली कागजात की जानकारी बहुत कम लोगो को थी। इन सब बातो से सदेह बढता है कि जानबूझकर उनके जीवन के साथ खिलवाड किया गया।

21 जुलाई 1975 को श्री जयप्रकाश नारायण ने प्रधानमत्री को पत्र लिखा— मैं समाचार पत्रो मे छपे आपके भाषणो और भेंटवार्ताओ से व्याकुल हूँ। (यह तथ्य है कि आपको अपने कृत्य के औचित्य को सिद्ध करने के लिए प्रतिदिन ही कुछ-न-कुछ कहना पड रहा है। यह आपकी दोष भावना स्पष्ट करता है) प्रेस और जनमत का मुँह बद करके झूठ और भ्रामक तथ्यो की आलोचना व विरोध से निडर होकर आप कहती जा रही हैं।

आपके कहने का तात्पर्य जहाँ तक मैं समझ सका हूँ, यही है कि— (अ) सरकार को उखाडने की योजना थी (ब) एक व्यक्ति पुलिस व सेना मे विद्रोह की भावना फैला रहा है।

मैं ही जब नाटक का खलनायक हूँ तो मुझे सारे तथ्य स्पष्ट रूप मे रख देने चाहिए। यह सम्भवत: आपके लिए बेकार हो, क्योकि आपके सभी भ्रामक व झूठे तथ्य सुनियोजित और सुरक्षित हैं फिर भी आखिर सत्य कहो तो होगा ही।

जहाँ तक सरकार को उखाड़ने का प्रश्न है, ऐसी कोई योजना नहीं थी और आप यह अच्छी तरह जानती हैं।

नजरबंदी के 130 दिनों में उन्हें अकेला रखा गया। यह अकेलापन उनके लिए बहुत कष्टदायी था। डाक्टर नर्स और पुलिस अफसर स्वास्थ्य के बारे में पूछने आते थे। ऐसा कोई नहीं था जिससे जे०पी० खुलकर बात कर पाते। उन्होंने अधिकारियों से कहा कि हजारों गिरफ्तार लोगों में से किसी एक को मेरे पास रख दिया जाय ताकि मैं बातचीत कर सकूँ। पर यह प्रार्थना स्वीकार नहीं की गयी।

डायलेसिस और डायलेसिस

चंडीगढ़ से रिहाई के बाद जे०पी० नयी दिल्ली के आल इंडिया इंस्टीटियूट आफ मेडिकल साइंसेज में भर्ती हुए। यहाँ छह दिन तक इलाज चला। जे०पी० के भाई श्री राजेश्वर प्रसाद को दिल्ली में इलाज पर विश्वास नहीं था। इसलिए उनके भाई उन्हें बम्बई ले गये जहाँ 22 नवम्बर को उन्हें जसलोक अस्पताल में भर्ती कराया गया। डाक्टरों ने कहा कि यदि आप पन्द्रह दिन पहले आ जाते तो गुर्दे को काम लायक रखा जा सकता था। यहाँ डाक्टरों ने उनका जीवन बचा लिया, उन्हें डायलेसिस लगाकर जीवित रखा गया। डायलेसिस लगाकर उनका रक्त शुद्ध किया जाता। यह क्रिया सात घंटे तक चलती थी। इलाज बहुत नाजुक और कष्टप्रद था। लेकिन विवशता थी इसके सिवाय और कोई उपाय नहीं था। सात घंटे तक शरीर का सारा रक्त एक नली के द्वारा मशीन तक पहुँचाया जाता और शुद्ध होने के बाद फिर एक दूसरे ट्यूब द्वारा शरीर में पहुँचाया जाता। यह इलाज हर तीन दिन के बाद कराया जाता। जसलोक अस्पताल में उनका इलाज मुफ्त हुआ। इलाज बहुत मंहगा था। सारा खर्च अस्पताल स्वयं उठाता रहा।

सारा जीवन जसलोक अस्पताल में बिताना सम्भव नहीं था। कुछ मित्रों ने निश्चय किया डायलेसिस का इलाज घर पर ही कराया जाय। मंहगे यंत्र खरीदने के लिए जे०पी० स्वास्थ्य रक्षा कोष स्थापित किया गया। हजारों लोग अनुदान देने के लिए आगे आये। लेकिन हर

व्यक्ति से केवल एक रुपया ही लिया गया। इस कोष को सर्वप्रथम दान देने वाले व्यक्ति विनोबा भावे थे। तीन सप्ताह मे ही तीन लाख रुपया एकत्रित हो गये।

डायलेसिस और यत्र आदि खरीदने म एक लाख अस्सी हजार रुपये खर्च हुए। इलाज मे प्रति मास तीन हजार रुपये खर्च आता।

मई 1976 के अन्त मे श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने प्रधानमत्री के राष्ट्रीय सहायता कोष से गाँधी शाति प्रतिष्ठान के मत्री के पास 90,000 रु० भेजे जो जे०पी० ने वापस करा दिया।

घर पर जे०पी० के सचिव श्री टामस अब्राहम और जानकी पाडे जे०पी० के डायलेसिस लगाते थे। इन दोनो ने बम्बई मे डायलेसिस लगाने की शिक्षा प्राप्त की। उनके दायें हाथ की धमनी और शिरा को जोडने के लिए किया गया प्रत्यारोपण सफल हो गया। इस प्रत्यारोपण के दौरान कोई बाधा उपस्थित नही हुई। डाक्टरो को इस सफलता पर बहुत हर्ष था।

उनकी भतीजी श्रीमती ज्योतिप्रसाद अमेरिका मे रहती हैं। वे चिकित्सा क समय उनके साथ रही। वे दो सप्ताह तक सिएटल मे रहे। 17 मई को वह न्यूयार्क के लिए रवाना हो गये। स्वीडिश अस्पताल के समागार मे भारतीयो का एक दल उनसे मिला। जे०पी० ने उनसे कहा मैं अब अधिक स्वस्थ महसूस कर रहा हूँ। अब आशा है मैं जीवन मे अधिक सक्रिय रहूँगा। जो भारतीय यहाँ रहना चाहते हैं वे खुशी से यही रहे। यदि आप स्वदेश जाकर काम करेंगे तो देश की अधिक सेवा होगी।

न्यूयार्क पहुँचने पर भारतीय राजदूत श्री केवलसिंह, राष्ट्रसघ में भारत के राजदूत श्री रिखी जयपाल और भारतीय महावाणिज्य दूत श्री एन०जी० असरानीआदि ने उनकी अगवानी की। न्यूयार्क मे वे जिस अस्पताल मे ठहरे वहाँ भी काफी लोग उनसे मिलने आये। दर्शनार्थी उनके लिए उपहार लेकर आ रहे थे। जब उन्हें उपहारो के बारे मे पता चला तो उनका चेहरा गुस्से से लाल हो गया। उन्होंने जोर से कहा—'नही, मैं यह पसद नही करता।'

अगले दिन 19 मई को अमेरिका के राष्ट्रपति श्री कार्टर ने उनसे फोन पर बातचीत की। उस समय वे लंदन जाने की तैयारी कर रहे थे कि श्री कार्टर का फोन आ गया। एक नर्स दौड़ती हुई आयी और उसने बताया कि राष्ट्रपति का फोन आया है। श्री कार्टर ने उनके स्वास्थ्य के बारे में पूछताछ की। इसके बाद वे लंदन रवाना हो गये।

19 मई को प्रातःकाल वे लदन पहुँच गये। वे काफी प्रसन्न नजर आ रहे थे। तीन सप्ताह पूव सिएटल जाने के लिए वह बीमारी की हालत में यहाँ आये थे, तब उनकी हालत काफी खराब थी। अब स्वस्थ्य नजर आते थे। लंदन मे उनके सम्मान मे एक होटल में अनौपचारिक समारोह आयोजित किया गया। इस अवसर पर श्री फिलिप नोयेल बेकर और लार्ड फेनर ब्राकवे ने उनकी सराहना की।

अपने स्वागत के उत्तर मे उन्होंने कहा कि मैं एक घायल सिपाही हूँ। हाल मे हमने भारत मे लोकतंत्र स्थापित करके महान विजय प्राप्त की है। यह किसी एक व्यक्ति या संयुक्त प्रतिपक्ष का चमत्कार नहीं है। इसका सारा श्रेय जनता को जाता है।

लंदन से बंबई ले जाने के लिए एयर इंडिया के बोइंग विमान में विशेष शायिका का प्रबन्ध किया था एयर इंडिया की 118 उड़ान से 20 मई को वह बम्बई के लिए रवाना हो गये। वह तेहरान होते हुए भारत आये।

21 मई को बम्बई के हवाई अड्डे पर प्रात.काल महाराष्ट्र के राज्यपाल श्री सादिक अली, मुख्यमंत्री वसंत दादा पाटिल, बम्बई के महापौर श्री मुरली देवरा और लोकसभा अध्यक्ष श्री नीलम संजीव रेड्डी ने उनका स्वागत किया। वे विमान से पहिये वाली कुर्सी में बैठकर कार में गये। हवाई अड्डे से जसलोक अस्पताल ले जाकर उनका परीक्षण किया गया।

1942 के आंदोलन के सिलसिले में जे०पी० 1943 में गिरफ्तार किये गये थे और लाहौर के किले में उन्हें अकेला रखा गया था। जे०पी० ने एक साथी की माँग की तो ब्रिटिश सरकार ने डा० राम मनोहर लोहिया को प्रतिदिन उनसे मिलने की छूट दी थी। लेकिन

इंदिरा गाँधी की सरकार यह छूट देने के लिए राजी नही हुई ।

बार-बार आग्रह करने पर कहा गया कि आपका निजी सेवक गुलाब यादव आपके साथ रह सकता है । यह जे०पी० ने स्वीकार नही किया । क्योकि उन्हें साथी की आवश्यकता थी, सेवक की नही । दूसरे गुलाब को उनके साथ रखने का अर्थ था कि उसे बिना किसी कारण नजर बद करना । जो कि अन्याय था । साढे चार माह जे०पी० बिल्कुल अकेले रहे ।

नजरबदी के कमरे से लगा एक बरामदा था । कमरे के दोनो ओर सशस्त्र सतरी तैनात रहते थे । जे०पी० थोडा खुले मे घूमना चाहते थे । बहुत जिद् करने पर 18 सितम्बर 1975 को अस्पताल के अतिथि भवन मे तबादला कर दिया गया, जिससे जे०पी० घूम सकें । लेकिन जल्दी ही उनके पेट मे भयकर पीडा होने लगी । दवा से थोडा आराम मिला । 8 अक्तूबर को फिर दद उठा जो सारे माह चला । इस दर्द के इलाज के लिए अक्तूबर को उन्हें पुन उसी पुराने कमरे मे रखा गया । इस कमरे मे वह रिहाई के दिन 12 नवम्बर तक रहे । रिहाई के समय जे०पी० मरणासन्न हालत मे थे ।

सरकार ने उन्हें तब छोडा जब यह स्पष्ट हो गया कि रोग की पहचान नही हो सकती और बचने की आशा नही है । घोषणा की गयी कि उन्हें पैरोल पर रिहा किया गया है । जे०पी० ने पैरोल नही माँगा था । अधिकारियो ने बताया कि पैरोल एक बहाना था और रिहाई बिना शर्त थी 14 दिसम्बर 1975 को नजरबदी का आदेश रद्द किया गया ।

रिहाई के एक सप्ताह पूर्व पाँच नवम्बर को उन्हें बताया गया कि आपके गुर्दे बेकार हो गये हैं । गिरफ्तारी से पहले जे०पी० को ऐसी कोई शिकायत नही थी । नजरबदी के चार महीनों मे गुर्दों का पूरी तरह बेकार हो जाना आश्चर्यजनक था । जे०पी० को पता ही नहीं चला कि उन्हें यह रोग कैसे और कब हो गया । सारा मामला रहस्यमय था । मित्रो ने शका प्रकट की । जे०पी० को सदेह था कि उनके गुर्दे जानबूझकर खराब कर दिये गये हैं ।

नजरबन्दी के दौरान जे० पी० डायरी लिखते रहे जो उनके अकेलेपन और मानसिक यंत्रणा पर प्रकाश डालती है। यहाँ उसके कुछ अंश दे रहे हैं। 21 जुलाई, 1975 को उन्होंने लिखा—

टुकड़े-टुकड़े होकर बिखरा हुआ है, मेरा संसार, मेरे आसपास। मुझे डर है कि अब अपने जीवनकाल में इसे पुनः जोड़कर सम्पूर्ण नहीं बना सकूँगा।

आखिर हमारा गणित कहाँ पर गलत हो गया। मैंने सोचा था कि एक प्रजातंत्र मे प्रधानमन्त्री किसी जनतांत्रिक आन्दोलन को दबाने के लिए साधारण-असाधारण कानून का सहारा ले सकती हैं, पर वे स्वय प्रजातंत्र को ध्वस्त करके उसके स्थान पर तानाशाही नहीं प्रतिष्ठित करेंगी। यदि करेंगी भी, तो उनके वरिष्ठ सहयोगी और उनकी उच्च जनतांत्रिक परम्परा वाली पार्टी ऐसा नहीं करने देगी। लेकिन यही मेरा अनुमान गलत था। आज असम्भव, सम्भव हो गया।

प्रजातंत्र के तावूत में जड़ी जानेवाली हर कील मानो मेरे हृदय पर जड़ी जा रही है। मैंने खूब विचार किया है और अब मैं कह सकता हूँ कि अब मुझे जीने का मोह नही रह गया। क्या प्रजातंत्र के गले पर कसता हुआ यह मौत का शिकंजा है, जिसके कारण मेरा हृदय रोता है, क्या हम इसी दिन के लिए लड़े थे, इसी दिन के लिए हमने जीवन भर कशमकश की थी?

15 अगस्त 1975

आज 15 अगस्त है। हमारी स्वतंत्रता के 28 वर्ष पूरे हुए। स्वतन्त्रता की लड़ाई सिर्फ राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिए नही लड़ी गई थी। स्वतन्त्र भारत में प्रजातंत्र लाया जाएगा, यह भी हमारी लड़ाई का विशेष लक्ष्य था। उसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर विधानसभा ने प्रजातांत्रिक भारत का विधान बनाया था और उसी के अनुसार 26 जनवरी, 1950 को भारत गणतंत्र घोषित किया गया था।

21 सितम्बर 1975

तो, नयी दिल्ली की भयभीत महिला के अनुसार हम सब यानी

मोरारजी देसाई, अशोक मेहता, अटलबिहारी वाजपेयी, चन्द्रशेखर, रामधन और अन्य लोग मिलकर योजना बना रहे थे कि श्रीमती गाधी, उनके परिवार, उनके मुख्य मन्त्रिगण और उनके अन्य समर्थकों को समूल नष्ट कर देंगे। उन्होंने यह स्पष्ट नही किया कि हम यह करेंगे कैसे और 'नष्ट करने' के अर्थ वास्तव मे क्या हैं। मैंने उन्हे 'नयी दिल्ली की भयभीत महिला' कहा है। वे डरी हुई सचमुच हैं। अपने विरुद्ध उमडते हुए जनमत से डर कर अपना आपा खो बैठी है।

लेकिन अभी जो उन्होंने उनके स्वय और उनके परिवार के विरुद्ध हमारी साजिश की बात कही, वह केवल भय के कारण नहीं, वह एक जानबूझ कर बोला गया झूठ था, जो अपनी नीतियो का औचित्य ठहराने की एक कमजोर दलील थी।

नये दल का निर्माण

समाजवादी दल भारतीय जनसघ, सगठन कांग्रेस, भारतीय लोकदल, क्रान्तिकारी समाजवादी दल, सोशलिस्ट यूनिटी सेंटर, मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी, मार्क्सवादी समन्वय समिति और अकाली दल आदि का सम्पूर्ण क्रान्ति आन्दोलन को सक्रिय सहयोग प्राप्त हुआ था।

20 और 21 मार्च 1976 को बम्बई मे समाजवादी, जनसघ, भारतीय लोकदल और सगठन कांग्रेस के प्रतिनिधियो की बैठक हुई जिसमें जे० पी० ने भी भाग लिया। सबने नया दल बनाने का निश्चय किया। सर्वश्रीएन०जी०गोरे(समाजवादी),ओमप्रकाश त्यागी(जनसघ), एच० एम० पटेल (भालोद) और शान्तिभूषण (सगठन कांग्रेस) की सदस्यता मे सचालन समिति गठित की गई जिसके सयोजक श्री गोरे थे। इस समिति ने नये दल की रूपरेखा और कार्यक्रम तैयार किया।

22 और 23 मई को इन चार दलों के प्रतिनिधियो की दूसरी बैठक बम्बई मे फिर हुई और 25 मई को जयप्रकाशजी ने इस नये दल की घोषणा की।

20 जुलाई 1976 को जे० पी० बम्बई से पटना आये। हजारों लोग उनके दर्शनो के लिए आये जिन्हें उनसे मिलने नहीं दिया गया।

नही पडेगा। दूसरे इतने कम समय मे वे अपना पूरा प्रचार और चुनाव की तैयारी भी भली प्रकार नही कर सकेगे जिसका लाभ कांग्रेस को मिलेगा। आपातस्थिति के दौरान कांग्रस, कांग्रेस की नीतियो, प्रधानमन्त्री, केन्द्रीय मन्त्रियो और श्री सजय गाधी का दूरदर्शन आकाशवाणी और समाचार पत्रो से जो धु आधार प्रचार किया गया, उसका लाभ भी कांग्रस को मिलेगा। यह भी सोचा गया था कि आपातस्थिति के दौरान श्रीमती इन्दिरा गाधी और श्री सजय गाधी की लोकप्रियता बहुत बढी है। बीस सूत्रीय कायक्रम और पाँच सूत्री कायक्रम को जनता ने भारी समर्थन दिया है। इसलिए इस चुनाव मे प्रतिपक्ष को भारी पराजय देखनी पडेगी। वैसे भी लम्बे समय तक बन्द रहने के कारण वे कांग्रेस से टक्कर लेने मे समर्थ नही हो सकेंगे। चुनाव की घोषणा के साथ ही राजनीतिक बन्दी रिहा किये जाने लगे, ताकि वे चुनाव मे भाग ले सकें।

श्रीमती गाधी की चुनाव घोषणा के अगले दिन ही 19 जनवरी को जे० पी० ने पटना मे कहा कि विरोधी दल मिलकर चुनाव लड़ें। कांग्रस का मुकाबला करने के लिए प्रतिपक्ष को एक दल के रूप मे लडना चाहिए। अलग अलग कई दलो मे विभाजित रहने से प्रतिपक्ष को हानि होती है, जिसका लाभ कांग्रेस उठाती रही है। केवल एक दल के रूप मे सगठित होना प्रतिपक्ष के लिए शुभ होगा। जे० पी० ने शिकायत की कि चुनाव के लिए प्रतिपक्ष को बहुत कम समय दिया गया है। इतने कम समय मे चुनाव की तैयारी करना लगभग असम्भव है। प्रतिपक्ष को थोडा और समय दिया जाना चाहिए।

22 जनवरी को जे० पी० दिल्ली पहुँचे। वहाँ श्री मोरारजी देसाई के निवास स्थान पर उन्होने गैर कम्युनिस्ट प्रतिपक्षी दलो से बातचीत की। इस बातचीत मे सगठन कांग्रेस, जनसघ सोशलिस्ट पार्टी और भारतीय लोकदल के नेताओ ने भाग लिया। बातचीत चुनाव के सम्बन्ध म और एक दल के निर्माण के बारे मे हुई। अगले दिन 23 जनवरी को नवगठित जनता पार्टी ने 27 सदस्यो की राष्ट्रीय समिति की घोषणा की, जिसके श्री मोरारजी देसाई अध्यक्ष थे। दिल्ली मे जनता

पार्टी का चुनाव अभियान शुरू करते हुए जयप्रकाशजी ने देशवासियों से जनता पार्टी को वोट देने की अपील की। उन्होने कहा कि यह साधारण चुनाव नहीं है। यह चुनाव ऐतिहासिक और निर्णायक साबित होगा। इस बार जनता को केवल नेता नही चुनने हैं, बल्कि प्रजातंत्र और तानाशाही के बीच चुनाव करना है। यह चुनाव देश के भाग्य का निर्णय करने वाला सिद्ध होगा कि जनता तानाशाही और गुलामी का जीवन पसन्द करती है या प्रजातन्त्र का रास्ता चुनकर स्वतंत्रता-पूर्वक जीना चाहती है।

लोगों को विश्वास नही हो रहा था कि आपातस्थिति में ढील दे गई है या वे अपने विचार प्रकट करने के लिए स्वतन्त्र हैं। लोगों के मन में भय और आतंक समाया हुआ था। हर आदमी दूसरे से डर रहा था। प्रतिपक्ष के चुनाव अभियान में भी कोई खास तेजी नहीं आई थी कि तभी एक नाटकीय घटना घटी जिसने जनता और प्रतिपक्ष को नैतिक बल दिया और कांग्रेस की इमारत की नीव हिलने लगी। यह ऐतिहासिक घटना 2 फरवरी 1977 को घटी जिस दिन श्री जगजीवनराम ने केन्द्रीय मंत्रिमण्डल और कांग्रेस से त्याग पत्र दे दिया। उन्होने कांग्रेस फार डेमोक्रेसी नामक नए दल के निर्माण की घोषणा की। श्री जगजीवनराम के इस निर्णय के साथ उत्तर प्रदेश के भूतपूर्व मुख्य मन्त्री श्री हेमवती नन्दन बहुगुणा, उड़ीसा की भूतपूर्व मुख्य मन्त्री श्रीमती नंदिनी सतपथी और श्री के० आर० गणेश आदि थे। बाबू जगजीवनराम ने सरकार से आपातस्थिति हटाने की माँग की।

19 महीने तक बाबू जगजीवनराम किसी प्रकार जनता पर किए गए अत्याचारों को सहते रहे। श्री जयप्रकाश नारायण के प्रति उनकी सद्भावनाएँ कब तक दबी रहतीं। उन्होंने अन्तिम फैसला लेकर और जे० पी० के पक्ष मे खड़े होकर जन जन के मन में समाए भय और आतंक को पोंछ दिया। इस नई घटना से कांग्रेस में हड़बड़ी मच गयी। बाबू जी पर मनमाने आरोप लगाये जाने लगे। अनेक हरिजन नेताओं से वक्तव्य दिलाए गये कि हरिजन बाबू जी के साथ नही है। लेकिन इन सारे आक्रमणों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। श्री जगजीवनराम ने

जे० पी० का रास्ता अपनाने का ही निश्चय किया।

छह फरवरी को दिल्ली के रामलीला मैदान मे आयोजित सार्वजनिक सभा मे जे० पी० ने भाषण किया। जनता पार्टी की यह पहली सार्वजनिक सभा थी जिसमे सर्व श्री विजय कुमार मलहोत्रा, प्रकाशसिंह बादल के साथ जगजीवनराम और हेमवती नदन बहुगुणा ने भाषण किया। जे० पी० ने इस ऐतिहासिक सभा मे कहा कि जन स्वतन्त्रता बहुत बडी चीज है। जन स्वतन्त्रता की स्थापना जरूरी है। हम तानाशाही के विरुद्ध लड रहे हैं। जनता पार्टी को वोट देने की अपील करते हुए उन्होने तानाशाही या आजादी मे से एक चुनने की सलाह दी। उन्होने कहा कि सरकार बार-बार यह कह रही है कि हम हिंसा फैलाना चाहते हैं। मेरी देशवासियो से अपील है कि वे हिंसा न करें। सरकार हमे बदनाम करने के लिए चाहती है कि देश मे हिंसा हो। कांग्रेसी सरकार हिंसा भडकाना चाहती है। हमे अपने ऊपर नियन्त्रण रखना है। आप लोग किसी प्रकार के भडकावे मे न आयें और हिंसा न होने दें।

11 फरवरी को राष्ट्रपति श्री फखरुद्दीन अली अहमद का निधन हो गया। इस घटना से चुनाव प्रचार मे थोडी ढील आयी। लोगो का ध्यान कुछ समय के लिए राष्ट्रीय शोक की ओर बट गया।

17 फरवरी को जे० पी० ने कलकत्ता मे श्रीमती गांधी से कहा कि वे तानाशाहीपूर्ण रवैया छोड दें और देश मे प्रजातन्त्र की स्थापना करें। यही देश के हित मे होगा।

2 मार्च 1977 को जे० पी० बम्बई के जसलोक अस्पताल मे थे। वहाँ वे पूर्ण स्वस्थ और प्रसन्न थे। जनता पार्टी ने माँग की कि नजरबन्दी के दौरान जे० पी० अचानक गम्भीर रूप से बीमार कैसे हो गए। इस बारे मे जाँच की जाय। कुछ लोगो ने आशका व्यक्त की कि जे० पी० की इस हालत के लिए केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्री डा० कर्णसिंह जिम्मेदार हैं। वे सार्वजनिक रूप से माफी माँगकर अपना उत्तरदायित्व स्वीकार करें। चार मार्च को जे० पी० के डायलेसिस लगाया गया। उस दिन सांयकाल वे प्रसन्न नजर आ रहे थे। चिकित्सा के बाद 8 मार्च को वे

बम्बई से पटना आये। थोड़ा कमजोर थे। कलकत्ता हवाई अड्डे पर उन्होंने पत्रकारों से कहा कि प्रतिपक्ष सरकार बनाने में समर्थ है। प्रतिपक्ष के नेताओं में कांग्रेस से अधिक प्रतिभा और कुशलता है। इसलिए यह कहना गलत है कि प्रतिपक्ष यदि जीत गया तो वह सफल सरकार नहीं बना सकेगा।

नौ मार्च को उन्हें पुन: डायलेसिस लगाया गया। 13 मार्च को नई दिल्ली मे मतदाताओं से अपील की कि कांग्रेस को हराना बहुत जरूरी है तभी सच्चा प्रजातन्त्र स्थापित हो सकेगा। सत्तारूढ़ दल के पास अनेक काले कानून हैं। यदि उसे पुन: मौका मिला तो कांग्रेस निर्दयता से इन कानूनो को लागू करेगी। इसलिए जनता को सोच-समझकर वोट डालना चाहिए। जनता पार्टी ने इन काले कानूनों को समाप्त करने का निश्चय किया है। देशवासियों के लिए यह अन्तिम अवसर है। यदि वे इस बार चूक गए तो 19 महीने के अत्याचार 19 वर्ष के आतंक में बदल सकते हैं। हम न्याय के साथ देश की प्रगति चाहते हैं, अन्याय के रास्ते से नहीं। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रथम शर्त स्वतन्त्रता है।

16 मार्च 1977 को देश के अनेक राज्यों में मतदान आरम्भ हो गया। देश भर में गहमागहमी और परिणामों के बारे में उत्तेजना का वातावरण था। 20 मार्च को चुनाव परिणाम घोषित हुए। श्रीमती इन्दिरा गांधी को रायबरेली निर्वाचन क्षेत्र में श्री राजनारायण ने 55,000 मतों से पराजित कर दिया। अमेठी में श्री संजय गांधी को श्री रवीन्द्र प्रताप सिंह ने पराजित किया। भिवानी में रक्षामंत्री श्री बंसीलाल को श्रीमती चन्द्रावती ने 1,65,000 मतों से हराया। श्री विद्याचरण शुक्ल भी रायपुर में हार गये। कांग्रेस के सारे दिग्गज एक-एक करके परास्त हो गए। 21 मार्च को ज्ञात हुआ कि जनता पार्टी और उसके सहयोगियों को पूर्ण बहुमत प्राप्त हो गया है।

यह केवल कांग्रेस की पराजय और आपातस्थिति को रद्द करने का निर्णय नहीं था, बल्कि जयप्रकाशजी की नीतियों और कार्यक्रम में जनता के अटूट विश्वास और आस्था की अभिव्यक्ति थी। जनता पार्टी

को स्वयं इतनी भारी सफलता की आशा नहीं थी। जनता ने 19 महीनों के आतंक और अत्याचार का उत्तर कांग्रेस को बुरी तरह धाराशायी करके दिया। उत्तर भारत मे कांग्रेस प्राय समाप्त हो गयी। उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, बिहार, हिमाचल प्रदेश आदि अनेक राज्यो मे कांग्रेस को एक भी स्थान प्राप्त नही हुआ। राजस्थान और मध्य प्रदेश, मे वह केवल एक-एक ही स्थान प्राप्त कर सकी। 22 मार्च को श्रीमती गांधी ने प्रधानमंत्री पद से और अपने मन्त्रिमंडल का त्याग-पत्र दे दिया। 23 मार्च 77, को साय 5 बजे नई दिल्ली के हवाई अड्डे पर जे०पी० का भव्य स्वागत हुआ। वे पटना से दो दिन के लिए दिल्ली आये थे। हर्ष विभोर जनता ने 'लोकनायक जिन्दाबाद' के नारे लगाये। तानाशाही लाने वाली शक्तियों की भारी पराजय पर जे०पी० की प्रसन्नता फूटी पड़रही थी। देश भर मे नये उत्साह और हर्ष का वातावरण था।

प्रधानमन्त्री पद के दो उम्मीदवार थे— श्री मोरार जी देसाई और श्री जगजीवनराम, इन दोनो मे से किसे संसदीय पार्टी का नेता चुना जाए यह निर्णय जे० पी० और आचार्य कृपलानी को करना था। दोनो की सहमति श्री मोरारजी के पक्ष मे थी। 24 मार्च को श्री देसाई ने प्रधानमंत्री पद की शपथ ली। इस शपथ के साथ 30 वर्ष तक केन्द्रीय सरकार मे कांग्रेस का एकछत्र प्रभुत्व समाप्त हो गया।

24 मार्च, 1977 को संसद के केन्द्रीय कक्ष मे हुई शपथ ग्रहण की कार्रवाही को भारत के इतिहास की महान् घटना कहा जा सकता है। इस अवसर पर जे०पी० ने कहा कि मैं मानता हूँ कि राजशक्ति और लोकशाही का आपस मे गहरा सम्बन्ध है और दोनो को साथ-साथ चलना होगा। दोनो की हैसियत बराबर है। राजशक्ति लोकशक्ति से बड़ी नही है। दोनो का आपस मे ऐसा सम्बन्ध है, जैसे दोनो हथेलियो का। अगर राज्यशक्ति की हथेली लोकशक्ति के नजदीक नही आयेगी तो ताली नही बजेगी। ऐसी स्थिति आ सकती है कि दोनो मे संघर्ष हो और एक क्रान्ति आ जाए। 30 वर्षों बाद हम इतिहास के एक नये अध्याय की शुरुआत कर रहे हैं। यह सिर्फ सरकार और प्रशासन का

परिवर्तन मात्र नहीं, यह एक नये भारत और समाज के निर्माण की प्रक्रिया की शुरुआत है। पिछले 30 वर्षों का इतिहास बताता है कि पूरा ढांचा राज्यशक्ति पर आधारित रहा। नई सरकार चाहे जितने भी समय तक सत्ता में रहे उसे लोकशक्ति पर आधारित रहना चाहिए।

नये प्रधानमन्त्री श्री देसाई ने जे०पी० को आश्वासन दिया कि वह उनकी आशाओं के अनुकूल ही काम करेंगे। श्री देसाई के उत्तर से जे० पी० का गला रुँध गया। उन्होंने कहा कि मुझे उम्मीद नही थी कि इसी समय इस तरह का आश्वासन मिल जायेगा। पर क्योंकि श्री देसाई ने इस महान उपस्थिति की मौजूदगी में ऐसा आश्वासन दे दिया, तो अब कुछ कहने को नही रह गया।

संसद के केन्द्रीय कक्ष में उपस्थित सैकड़ों लोगों की आंखें उस समय नम हो गयी जब जे० पी० ने श्री देसाई की ओर देखकर कहा कि हालांकि मैं श्री देसाई से कुछ साल छोटा हूं पर मैं उनसे पहले ही इस नश्वर संसार को छोड़ जाऊंगा। पर मुझे खुशी है कि मैं एक महान आश्वासन के साथ जाऊंगा।'

इसी दिन जे०पी० भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी से मिलने उनके घर गये। वह वहाँ आधे घंटे तक रहे। दोनों नेताओं की बातचीत व्यक्तिगत थी। अगले दिन 25 मार्च को प्रधानमंत्री श्री देसाई ने 20 सदस्यीय मंत्रिमंडल की घोषणा की। जे०पी० को चिकित्सा के लिए बम्बई जाना पड़ा। वहाँ उन्हें डायलेसिस लगाया गया। सत्तारूढ़ संसदीय दल के नेता के चुनाव पर कांग्रेस फार डेमोक्रेसी के नेता श्री जगजीवनराम प्रसन्न नही थे इसलिए वह, श्री बहुगुणा, राजनारायण और श्री फर्नानडीज ने मंत्रिपद की शपथ ग्रहण नही की। मार्च को जे०पी० ने बम्बई से टेलीफोन पर बाबू जगज संदेश भेजा कि वह केन्द्रीय मंत्रिमण्डल में शामिल हो की सरकार के हाथ मजबूत करें और देश में प्रजातंत्र में सहयोग दें। जे०पी० के इस अनुरोध को बाबूजी उन्होंने मंत्रिमण्डल में शामिल होना स्वीकार कर

केन्द्र में नयी सरकार की स्थापना को जे०पी० ने

पूर्ति माना। उनकी यह भी मान्यता है कि लोकशक्ति का जो मूलतत्व है वह अभी लोगो की समझ मे अच्छी तरह नही आया। उनके अनुसार लोकशाही की मुख्य बात यह है कि दडशक्ति कम से कम होनी चाहिए और लोकशक्ति का विकास होत रहना चाहिए। सरकार और सरकार के काम गौण हो तथा जनता और जनता का काम मुख्य हो क्योकि लोकशाही मे जनता स्वय ही अपनो मे से अपनी पसद की सरकार बनाती है और उसे टिकाये रखती हैं।

आकाशवाणी और दूरदर्शन स एक भेंट म जे०पी० ने कहा कि केवल इसीलिए कि एक नयी सरकार केन्द्र म आ गयी है इसलिए ऊपर से नीचे तक उसके काम पर निगरानी रखने की जरूरत अब नही रही, ऐसा नही है। इसक लिए जनसमितियो का गठन किया जाना चाहिए। यह नयी सरकार के हित म होगा कि इस प्रकार की जन-समितिया का गठन हो और सत्ता मे आने वाले राजनैतिक दलो से मेरी अपेक्षा होगी कि वे इसका स्वागत करेंगी और इस कार्य को अपने विरुद्ध नही समझेंगी, वे इसे इस तरह लेंगी, कि इससे उनके कार्य मे उन्हें मदद मिलेगी।

प्रत्येक चुनाव क्षेत्र मे गाँव के स्तर पर गठित की जानेवाली ये समितियाँ चुनाव के साथ गठित की जायेंगी, नामजद नही होगी। इन समितियो के सदस्य जरूरी नही कि राजनैतिक दलो के सदस्य हो, उन का चुनाव, दलो के आधार पर नही बल्कि जनता के आधार पर होगा। ये समितियाँ देश की राजनैतिक प्रक्रिया का एक स्थायी हिस्सा बनेंगी।

एक लाख या दस लाख लोग इडिया गेट पर एकत्र हो सकते हैं, पर जो लोग सत्ता मे हैं वे कह सकते हैं कि इन लोगो को सड़को से एकत्र किया गया है इसलिए इस भीड को लोगो के रूप मे सगठित किया जाना चाहिए, राजनैतिक दलो क रूप मे नही, क्योकि राजनैतिक दल अपने दलो के नताओ के अगूठे के नीचे रहते हैं।

नयी सरकार का पहला काम यह होना चाहिए कि पिछले कुछ वर्षों मे जनता के मन मे जो भय पैदा किया गया है उसे हटाया जाये,

लोगों को इस भय से मुक्त करने के लिए जो भी जरूरी हो वह किया जाना चाहिए, सरकार लोगों को इस बात की पूरी आजादी दे कि उन्हें जो भी कहना हो वे कहें। लोग महसूस करें कि यह उन्ही की सरकार है। कोई भी गलत रास्ते पर जा सकता है अगर उसे सत्ता में कोई जगह मिल जाये। जो लोग सत्ता में हैं उन्हें इस बात से प्रसन्नता होनी चाहिए कि कोई ऐसी शक्ति है जो उसके और उसके साथियों के काम पर निगरानी रखे हुए है।

तस्करी छोड़ दी हमने

रविवार 10 अप्रैल, 1977 को अनेक तस्करों ने जसलोक अस्पताल में जे०पी० से भेंट की। इन तस्करों को आंतरिक सुरक्षा कानून के अंतर्गत गिरफ्तार किया गया था और हाल मे ही छोड़ा गया था। हाजी मस्तान और यूसुफ पटेल के नेतृत्व में सात तस्कर जे०पी० से मिलने गये। जे०पी० ने उनसे दस मिनट तक बातचीत की। उनसे कहा कि देश के हित में यह होगा कि ये लोग तस्करी का धंधा छोड़ दें। इससे उद्योग और अर्थव्यवस्था दोनों को लाभ पहुँचेगा। तस्करो ने जे०पी० के विचारो से सहमति व्यक्त की। उन्होने उन्हें आश्वासन दिया कि वे अब ये राष्ट्रविरोधी धधा छोड़ देगे। इन तस्करो ने यह भी आश्वासन दिया कि केवल हम तो यह काम छोड़ ही देंगे, अन्य लोगों को भी तस्करी छोड़ने के लिए राजी करेंगे।

30 अप्रैल को बम्बई में फिर 80 से अधिक तस्करों ने जयप्रकाश बाबू के समक्ष तस्करी का धंधा छोड़ने की शपथ ली। डाकुओ की भाँति यह भी हृदय परिवर्तन ही था। यह शपथ समारोह जसलोक अस्पताल के तीसरे तल्ले पर आडीटोरियम में हुआ। शपथ पत्र हिन्दुस्तानी मे श्री गोविन्द राव देशपाडे ने पढा जिसे सारे तस्करों ने दोहराया। उन्होंने कहा कि वे अपने कारनामो के लिए कोई दंड दिये जाने के लिए तैयार हैं। वे हर प्रकार की कानूनी कारवाई को स्वीकार करेंगे। उन्होने कहा कि यह शपथ हम इसलिए नही ले रहे हैं कि अधिकारी हम पर दया करें। हम क्षमा याचना की मांग नहीं कर रहे हैं।

शपथ ग्रहण कार्यक्रम का आरम्भ भजनो के साथ हुआ। सबसे पहले कुख्यात तस्कर यूसुफ पटेल बोलने खडे हुए। उन्होने कहा कि 250 से अधिक तस्करो ने शपथ पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये हैं। अनेक लोग इसलिए उपस्थित नही हो सके क्योकि उन्हें अदालतो मे या आयकर की सुनवाई के लिए जाना था। हम सब लोगो ने जीवन की नये तरीके से शुरूआत करने का निश्चय किया है।

हाजी मस्तान ने कहा कि हम केवल भारत के तटो से ही नहीं बल्कि सारे विश्व से तस्करी को समाप्त करने के लिए भरसक कोशिश करेंगे। इस कार्य मे हम श्री जयप्रकाश नारायण की प्रेरणा और आशीर्वाद प्राप्त होता रहेगा। ऐसी आशा है। तस्करो को आशीर्वाद देते हुए जे०पी० ने कहा कि जनता इन लोगो को बेहतर इसान बनने का अवसर दे। कोई भी व्यक्ति पूर्ण या दोष रहित नही है। लेकिन हर आत्मा मे आतरिक प्रकाश होता है जो कि प्राणी को बेहतर इसान बना देता है। आप लोगो ने आज जो कुछ किया है वह नयी पीढी के लिए एक उदाहरण बनेगा और दूसरे लोगो के लिए शिक्षा सिद्ध होगा।

नया जीवन मिल गया · डायलेसिस, डायलेसिस

13 अप्रैल का उन्हें डायलेसिस लगाया गया। अस्पताल के चिकित्सा निदेशक डा० शातिलाल मेहता ने घोषणा की कि श्री जयप्रकाशनारायण पूर्णतया स्वस्थ हैं। चिन्ता की कोई बात नही है। अस्पताल के अधिकारियो ने उनसे मिलने आनेवालो पर पूर्णतया प्रतिबध लगा दिया।

चडीगढ मे पी०जी०आई० अस्पताल मे जे०पी० की चिकित्सा से सम्बन्धित सारे कागजात सीलबन्द कर दिये गये। यह कार्रवाई 19 अप्रैल को की गयी। यह सदेह व्यक्त किया गया कि चिकित्सा के दौरान जे०पी० के गुर्दे जानबूझ कर खराब कर दिये गये। इस अस्पताल मे वह पहली जुलाई 1975 से 12 नवम्बर 1975 तक रहे थे। कागजात की इस खोजबीन के दौरान पता चला कि चिकित्सा के दौरान उनके असली नाम के बजाय कागजात पर नकली नाम नारायणदास दर्ज

किया गया था। केवल मूल दस्तावेजों में असली नाम दर्ज था। जिनकी जानकारी बहुत कम लोगों को थी।

चिकित्सा के दौरान एक विशेषज्ञ को जे०पी० की चिकित्सा के लिए बुलाया गया तो विशेषज्ञ के थैले की तलाशी ली गयी। बहुत दिनों तक रोगी की गंभीरता को छिपाया गया। अक्तूबर के अंतिम सप्ताह मे उनकी हालत बुरी तरह बिगड़ने लगी। कलकत्ता के कुछ रिश्तेदारों को सबसे पहले उनके रोग की गंभीर स्थिति के बारे में जानकारी मिली। अस्पताल के अधिकारियों को उनके जीवित बचने की आशा नहीं थी इसलिए उन्हें रिहा किया गया था।

भारत सरकार ने जे०पी० के चिकित्सा व्यवस्था की जांच के लिए एक आयोग की घोषणा की जिसके अध्यक्ष डा० फिलीपोस कोशी बनाये गये। बाद में 13 मई, 1977 को घोषणा की गई कि डा० कोशी के स्थान पर जांच आयोग का कार्य कर्नाटक के भूतपूर्व स्वास्थ्य मंत्री डा० नागप्पा अल्वा करेंगे। डा० कोशी का पुत्र चंडीगढ़ के पी०जी०आई० अस्पताल में नौकरी कर रहा था इस पर विवाद खड़ा हो गया तो डा० कोशी ने इस्तीफा दे दिया।

इस बीच अचानक जे०पी० की हालत बिगड़ने लगी और यह लगने लगा कि जसलोक अस्पताल मे उनके स्वास्थ्य की रक्षा कठिन होगी। तब पहली मई को ज०पी० को अमेरिका में 'सिएटल' ले जाया गया। वहां उन्हें स्वीडिश अस्पताल मे भर्ती किया गया। चिकित्सकों के अनुसार तीन मई को उनकी स्थिति संतोषजनक रही।

तीन मई को प्रातः काल उन्हें चार घंटे तक डायलेसिस लगाया गया, उसके बाद आपरेशन किया गया। आपरेशन डा० रोबर्ट एम० मैक ने किया। उनके साथ डा० क्रिस्टोफर आर० ब्लाग भी थे जो स्वीडिश अस्पताल के गुर्दा विभाग से सम्बद्ध हैं। जे०पी० के निजी चिकित्सक डा० एन० के मणि उनके साथ भारत से गये थे। आपरेशन के बाद डा० रोबर्ट मैक ने संतोष व्यक्त किया। बाद को उन्हें नींद आयी लेकिन बीचबीच में जग जाते थे और दर्द की शिकायत करते थे। सोमवार दो मई को उनकी बांयी बांह में शंट लगाया गया था।

तीन मई को उनकी दाहिनी बाँह मे हल्की सर्जरी की गयी। इसी से वह दर्द अनुभव कर रहे थे।

चार मई को वह प्रफुल्ल और तरोताजा नजर आ रहे थे। रक्त सचार अब साफ था लेकिन अगले 24 घटे सकट पूण थे जिनके दौरान उनकी स्थिति पर कडी नजर रखी गयी। तीन मई को कृत्रिम गुर्दा लगाने के आपरेशन मे ढाई घटे का समय लगा था। पहियेदार कुर्सी पर बैठाकर दोपहर दो बजे आपरेशन कक्ष म ले जाया गया। सायकाल साढे चार बजे वह वापस अपने कमरे मे आ गये। आपरशन के दौरान वह पूरी तरह होश मे रहे। वे अधिक समय तक डा० मणि से बात करते रहे।

आपरेशन सफल रहा और 4 घटे का सकटपूर्ण समय भी बीत गया। उनके रक्त मे चक्के नही बने। पाँच मई को डा० मणि ने उनकी स्थिति पर सतोप व्यक्त किया। डा० रोवर्ट एम० मंक ने उनका निरीक्षण किया तो वे अपने रोगी के स्वास्थ्य की प्रगति से खुश हुए। आपरेशन के बाद पहली बार पाँच मई को उ हें डायलेसिस लगाया गया। उन्हें जो नियोजित खुराक दी जा रही थी वह उन्हें पसद नही आ रही थी। डा० मणि को उनके भोजन की चिंता थी। भारतीय वाणिज्य दूत श्री मल्होत्रा ने उनके लिए नियमित रूप से भारतीय भोजन की व्यवस्था की थी। रात को उन्हें चावल, मूँग की दाल, गोभी की सूखी सब्जी और आलू दिय गये।

नाश्ते मे जे०पी० इडली लेते हैं। सिएटल मे इडली नही मिलने पर बडी चिंता प्रकट की गयी। चार मई को वहाँ दो दक्षिण भारतीय परिवार खोजे गये ताकि इडली प्राप्त हो सके। बाद मे भारत से इडली, भेजने की व्यवस्था की गयी। अमेरिका के राष्ट्रपति ने उनके स्वास्थ्य के लिए शुभकामना प्रकट करते हुए स्वागत सदश भेजा।

छ मई को उन्हें हल्का बुखार हो गया। उन्होने डाक्टर मणि से पूछा कि हम भारत कब लौटेंगे। मगलवार 10 मई को उनके पट मे तकलीफ हुई। साय-काल उन्हें भूख नही लगी। उन्हें एंटीबायटेक्स औषधियाँ देना बन्द कर दिया गया। 13 मई को वाशिगटन मे भारतीय

दूतावास ने बताया कि अब जे०पी० का पेट ठीक है और वे सामान्य रूप से भोजन कर रहे हैं।

15 मई को भारत में जे०पी० के स्वास्थ्य के लिए सामूहिक प्रार्थनाएं की गयी। बम्बई में विभिन्न धर्मावलम्बियों ने सामूहिक प्रार्थनाओं में उनके स्वास्थ्य और दीर्घ जीवन के लिए शुभ कामनाएँ कीं।

नयी दिल्ली के अरविंद आश्रम में आचार्य कृपलानी ने जयप्रकाशजी की दीर्घायु के लिए प्रार्थना में भाग लिया।

आपरेशन के बाद स्वयं जे०पी० ने भारतीय संवाददाताओं से कहा, "मैं यह आभास कर रहा हूँ कि मुझे एक नया जीवन मिला है।" मुझे आशा है कि मैं 10 वर्ष और जीवित रहने के लिए पर्याप्त शक्ति प्राप्त कर लूंगा।"

उन्होंने यह भी कहा कि मुझे कमजोरी तो है किन्तु जब से आया हूँ और आपरेशन हुआ है तब से बहुत अच्छा अनुभव कर रहा हूँ।

अस्पताल में एक मई को भर्ती होने के पश्चात् जे०पी० 15 मई को पहली बार दृश्यावलोकन के लिए बाहर निकले थे। उन्होंने कहा 'यह दृश्यावलोकन बड़ा ही स्फूर्तिदायक रहा'।

इस क्षेत्र मे रहने वाले भारतीयो की संस्था 'इंडियन फार डेमोक्रेसी' के एक प्रतिनिधिमंडल को उन्होने कहा कि भारत में लोकतंत्र के पुनः प्रतिष्ठित होने से सम्पूर्ण क्रांति का पहला चरण पूरा हुआ है, अभी हमें बहुत लम्बा रास्ता तय करना है।

भावी इतिहास हमारा है

आकाशवाणी तथा दूरदर्शन से 13 अप्रैल, 1977 की रात को जसलोक अस्पताल से राष्ट्र के नाम संदेश मे जयप्रकाश नारायण ने कहा कि जनता को जितनी जल्दी हो सके यह अधिकार दिया जाये कि वह अपने नये प्रतिनिधियों का चुनाव कर सके, ताकि प्रतिनिधि अपने चुनाव घोषणा पत्रों के अलावा जनता की मांगों के लिए प्रतिबद्ध हों।

श्री जयप्रकाशनारायण का यह संदेश जसलोक अस्पताल में टेप कर प्रसारित गया, जो इस प्रकार है:

पिछले कुछ महीनो से मेरे मित्रगण मुझ से आग्रह करते रहे हैं कि मैं देश के बारे मे आप से कुछ कहूँ, अपनी अस्वस्थता के कारण देश की वर्तमान स्थिति से मेरा सपर्क नही रह सका, इसलिए मैं कुछ कहने से हिचकिचा रहा था, अभी कुछ दिनों पहले प्रधानमत्री ने देश को सबोधित किया था, उनके उत्कृष्ट भाषण के बाद मुझे ऐसा लगा कि किसी भी व्यक्ति को कुछ और कहने की गुजाइश नही रह गयी, लेकिन मेरे मित्र अभी ऐसा सोच रहे हैं कि प्रधानमत्री ने अपना भाषण सरकार के प्रमुख के रूप मे प्रसारित किया था और इसलिए मेरे जैसे देश के एक साधारण नागरिक को जनता की ओर से अपना विचार व्यक्त करना चाहिए, मैं नही मानता कि जनता के विचार व्यक्त कर सकने का कोई अधिकार मेरे पास है, किन्तु मैं अपने विचार यहाँ एक साधारण नागरिक के नाते व्यक्त कर रहा हूँ।

सब स पहली बात जो मैं कहना चाहूँगा और जिस पर जोर देना चाहूँगा—वह यह है कि पिछले आम चुनाव के नतीजे छात्रों और जनता के उस आदोलन के परिणाम थे जो गुजरात से शुरू हो कर बिहार मे फैला और जिसके सदेश से सारा देश गूँज उठा।

इस सदेश का सार यह था कि यह आवश्यक नही है कि जनता का चुना हुआ कोई प्रतिनिधि अपने कार्यकाल की अवधि पूरी होने तक अपन पद पर बना ही रहे, आदोलन के दौरान, जिस सिद्धान्त पर जोर दिया गया था वह यही था कि अगर कोई प्रतिनिधि या प्रतिनिधित्व पर आधारित सरकार, अपन कर्तव्य का पालन नही करती, भ्रष्टाचारी, दमनकारी और अक्षम हो जाती है तब मतदाताओ को, यानी जनता को यह अधिकार है कि वह उनके इस्तीफ की माँग करे—भल ही उनका कायकाल पूरा न हुआ हो, इस सिद्धान्त का एक अच्छा उदाहरण सयुक्त राज्य अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति श्री रिचर्ड निक्सन का केस है।

यह सही है कि हमारे सविधान मे चुने हुए प्रतिनिधि को वापस बुला लेने का अधिकार शामिल नही किया गया है, लेकिन प्रजातन्त्र मे जनता के पास अलिखित अधिकार भी होते हैं, जिन्हें वह आवश्यकता

के अनुसार उपयोग में ला सकती है।

यह सब कहने का मतलब यह नहीं है कि थोड़े से असन्तुष्ट लोगों को यह हक है कि वह जब चाहें, तब निर्वाचित प्रतिनिधि या सरकार को सत्ता त्यागने के लिए मजबूर कर दें, लेकिन इसका यह मतलब जरूर है कि जब कभी भी जनता का बहुमत सन्देह से परे, यह विश्वास करने लगे कि निर्वाचित प्रतिनिधि या सरकार अक्षमता, भ्रष्टाचार और भाई-भतीजावाद का शिकार हो गई है, तब वे इस्तीफे की माँग कर सकें। जनता की आवाज का आदर किया जाना चाहिए। इस बात की सम्भावना है कि सत्तारूढ़ दल भी या सम्बन्धित प्रतिनिधि अपने समर्थकों को इकट्ठा करने की कोशिश करेंगे किन्तु अगर उनके खिलाफ उठी जनता की आवाज में सचाई है तो प्रजातंत्र की नैतिकता और व्यवहार के अनुरूप यह आवश्यक है कि बहुसंख्यक को अल्पसंख्यक पर तरजीह दी जाये।

पीछे मुड़कर देखने और इस बात पर गौर करने का यह अच्छा अवसर है कि किस तरह से गुजरात में भ्रष्टाचार के खिलाफ शुरू हुआ आन्दोलन पूरे भारत में फैल गया। इस जन आन्दोलन का खास मुद्दा राजनैतिक और सरकारी भ्रष्टाचार था। इसलिये इस आन्दोलन के तहत जो लोग सत्ता में आये हैं उनका यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह राजनैतिक और सरकारी क्षेत्रों से भ्रष्टाचार खत्म करने के लिए ठोस और कारगर कदम उठायें।—मे[illegible] कि उच्च न्यायालयों और सर्वोच्च न्यायालय की [illegible] राज्यों में बनायी जाये, जिसके पास [illegible] हों—इस बारे में बात करते समय [illegible] आये, लेकिन हमारे देश की [illegible] की जरूरत महसूस होती है। उदाहरण के [illegible] हो सकता है, जिसका नाम लोकपाल [illegible] सदस्य नहीं हों और इस संस्था को यह [illegible] तरफ से किसी जाँच पड़ताल की शुरुआत [illegible] सरकारी या गैर सरकारी निकाय की [illegible]

बीन कर सकें। कुछ कानून विशेषज्ञों को इस निकाय की रूपरेखा बनाने की जिम्मेदारी सौंपी जा सकती है और इस बारे मे एक धारा संविधान मे शामिल की जा सकती है। सरकार से सबसे पहले मेरी यह अपेक्षा है।

छात्रा और जनता के आन्दोलन मे जो मुख्य मांग उठायी गयी थी वह यह थी कि प्रशासनिक और चुनाव सम्बन्धी सुधार किये जायें जिससे कि चुनाव सस्ते हो सही तौर पर प्रतिनिधित्व सम्भव हो और प्रशासन जनता के निकट आये। एक अन्य महत्वपूर्ण मांग शिक्षा सम्बन्धी सुधारो के बारे मे थी कि शिक्षा प्रणाली को इस तरह गठित किया जाये कि सीधा सम्बन्ध देश की समस्याओ से बहतर तरह से निबट सके। यह इच्छा भी व्यक्त की गयी थी कि न्यूनतम शिक्षा सबको मिल सके और अज्ञान और निरक्षरता का समूल नाश किया जा सके। 6 मार्च, 1975 को लोकसभा के अध्यक्ष और राज्यसभा के अध्यक्षो के सामने मैंने जनता का जो मांगपत्र रखा था उसका यहां जिक्र कर देना बहतर होगा जिससे कि वह मानदण्ड स्पष्ट हो जाय जिनके आधार पर वतमान सरकारके काय और कायप्रणाली को परखा जा सके।

केन्द्र के अलावा राज्यो मे कांग्रेस सरकारें सत्ता मे हैं। यह आवश्यक है कि जनता को जितनीजल्दी हो सके यह अधिकार दिया जाये कि वह अपने प्रतिनिधियो का चुनाव कर सकें, ताकि प्रतिनिधि अपने चुनाव घोषणापत्रो के अलावा जनता की मांगो के लिए प्रतिबद्ध हो।

आपको यह याद होगा कि जनता के आन्दोलन के अन्तिम लक्ष्य की परिभाषा मैंने सम्पूर्ण क्रान्ति कह कर की थी। सम्पूर्ण क्रान्ति की मेरी कल्पना का कुछ लोगो ने मखौल उडाया और कुछ ने यह कहकर अवहेलना की कि सम्पूर्ण क्रान्ति एक अव्यवहारिक आदमी का सपना है। इसलिए मैं एक बार फिर से सम्पूर्ण क्रान्ति के विचार को दोहराना चाहता हूँ। और अपना विश्वास उसमे व्यक्त करता हूँ और इस बात की प्रतिज्ञा करता हूँ कि स्वास्थ्य का लाभ होते ही मै अपने आपको इस काय के लिए अर्पित कर दूंगा। हमारी विरासत मे कुछ चीजें बहुत मूल्यवान और महान हैं—उनकी हमे रक्षा करनी है और उन्हे मजबूत बनाना है। लेकिन साथ ही हमने उत्तराधिकार मे बहुत से

अन्धविश्वास, गलत मूल्य और अन्यायपूर्ण मानवीय और सामाजिक सम्बन्ध भी पाये हैं। जातिवाद इसका एक उदाहरण है। भगवान बुद्ध के समय से और हो सकता है उनसे पहले भी इस बात की कोशिश की गयी है कि ऊँच-नीच पर आधारित जाति प्रथा को खत्म किया जाये, लेकिन अभी तक यह प्रथा पूरे देश मे फैली हुई है। अब समय आ गया है कि हम हिन्दू समाज के इस कलंक को मिटा दें और भाईचारे और समानता को अपना आदर्श बनायें और अपने जीवन मे उतारें।

इसी तरह शादी, जन्म और मृत्यु से जुड़े हुए भी कुछ और बुरे रिवाज हैं। सम्पूर्ण क्रान्ति के द्वारा इन्हें भी खत्म किया जाना चाहिए।

अब मैं जीवन के अधिक आधुनिक पहलुओ की बात करूँगा, जैसे कि शिक्षा। समय आ गया है कि कोठारी कमीशन तथा दूसरे सारे शिक्षा कमीशन के आमूल परिवर्तन के सुझाव को लागू किया जाये। इस क्षेत्र में हम चीन के उदाहरण का अनुकरण कर सकते हैं। जहाँ सभी स्कूल और कालेज बन्द कर दिये गये थे और विद्यार्थियो को गांवो और झोंपड-पट्टियो मे भेजा गया जिससे कि वे जवान बूढ़े हर आदमी को बुनियादी शिक्षा दे सकें।

मैं यहाँ उन प्रचलित सामाजिक और आर्थिक सुधारों का जिक्र करूँगा जिनके बारे मे बात तो बहुत हुई लेकिन काम बहुत कम किया गया है। इन कामो के लिए युवा शक्ति का उपयोग किया जा सकता है, जिसका लाभ समाज और युवक दोनो को ही मिलेगा।

अन्त में मैं सिर्फ इतना कहूँगा कि ईश्वर कृपा से आनेवाले महीनो में मैं स्वास्थ्य लाभ के बाद सम्पूर्ण क्रान्ति के अपने कार्य मे भरसक योगदान दूंगा। लेकिन तब तक यह काम रुकना नही चाहिए। हर व्यक्ति अपनी सामर्थ्य के अनुसार अकेले अथवा दूसरो के सहयोग से इस काम को आगे बढ़ाये। हमारे देश के युवको के लिए यह एक प्रकाश स्तम्भ है। मैं आशा करता हूँ कि नवयुवक इस प्रकाश ... और अपनी यात्रा जारी रखेंगे। रुग्ण शैया से भी अपनी साम... अनुसार सलाह और निर्देश मैं देने के लिए तैयार हूँ।

मेरे नवयुवक मित्र—तुम्हारा मार्ग प्रशस्त हो।
सम्पूर्ण क्रान्ति अब नारा है—भावी इतिहास हमारा है।
अपना यह नारा भूलो नहीं।

जैन हिन्दी के सुप्रसिद्ध पत्रकार तथा दिल्ली
'नवभारत टाइम्स' के प्रधान सपादक हैं।
प्रकाशित उनकी टिप्पणियो तथा लेखो से
ा दृष्टि तथा मौलिक चिन्तन का सहज
ा जाता है।

लोक के अतिरिक्त हिन्दी बुक सेन्टर से
नकी अन्य पुस्तकें हैं भारत-पाक युद्ध की
याद रही बातें' जिसमे एक पत्रकार की
का अवलोकन होता है।

अक्षय कुमार जैन

अक्षयकुमार जैन हिन्दी के सुप्रसिद्ध पत्रकार तथा दिल्ली से प्रकाशित 'नवभारत टाइम्स' के प्रधान संपादक हैं। समय-समय प्रकाशित उनकी टिप्पणियों तथा लेखों से उनकी सूक्ष्म दृष्टि तथा मौलिक चिन्तन का सहज अनुमान मिल जाता है।

जेल से जनलोक के अतिरिक्त हिन्दी बुक सेन्टर से प्रसारित इनकी अन्य पुस्तकें हैं 'भारत-पाक युद्ध की डायरी' व 'याद रही बातें' जिसमें एक पत्रकार की सूक्ष्म दृष्टि का अवलोकन होता है।

शरद जोशी

जन्म : 21 मई 1931, उज्जैन (म० प्र०)

शिक्षण : यहाँ वहाँ, पता नहीं कहाँ-कहाँ। अन्त में होल्कर महाविद्यालय इन्दौर से बी०ए०।

शुरू में कहानियाँ, फिर जुड़ी पत्रकारिता, व्यंग्य लेखन, भोपाल में सरकारी नौकरी कुछ सालों और अब पिछले पन्द्रह वर्षों से स्वतन्त्र लेखन।

पहली किताब—'परिक्रमा'। फिर 'किसी बहाने', 'जीप पर सवार इल्लियाँ,' 'तिलस्म', 'रहा किनारे बैठ', 'दूसरी सतह' और 'पिछले दिनों'।

नाटकों का चस्का। 'अंधों का हाथी' और 'एक था गधा उर्फ़ अलादाद खां' नाटकों के प्रदर्शन सर्वत्र हुए।

फिलहाल बंबई में रहते हैं।